मैख़ाने की मस्ती के मस्ताने हज़ारों हैं

तफ़्सीर
छत्र पाल वर्मा

उत्कर्ष प्रकाशन

ISBN: 978-93-84236-84-7

मुद्रक एवं प्रकाशक : **उत्कर्ष प्रकाशन**

मुख्य कार्यालयः

142, शाक्य पुरी, कंकरखेड़ा, मेरठ

कैन्ट–250001 (उ0प्र0)

फोनः 0121–2632902, 08791681996

प्रशासनिक कार्यालयः

लोहिया गली–4, बाबरपुर, शाहदरा, दिल्ली–94

फोनः 09897713037

प्रथम संस्करण : **2015**

मूल्य : ₹ **200**

लेखक : **छत्र पाल वर्मा**

पता : 35, शिवम टेनेमेंट्स, आई. पी. हिन्दी हाई स्कूल के पास, वल्लभ पार्क, साबरमती, अहमदाबाद (गुजरात)–382424

चल दूरभाष : 8128654981, 07600554981

ई–मेल : crmsvkkvsmrs@gmail.com

मेरी

वालिदा जन्नतनशीं

श्रीमती कस्तूरी देवी

और

वालिद श्री राम रतन जी

के

क़दमों में...

"मैख़ाने की मस्ती के मस्ताने हज़ारों हैं"

'मैख़ाने की मस्ती के मस्ताने हज़ारों हैं' के उनवान के तहत **'श्री छत्र पाल जी'** मुख़तलिफ़ शुअरा के मुंतख़ब अश्आर का मज़्मुआ कारेईन के हाथों में रखते हुये बक़ौले ख़ुद अपनी बेबज़ाअती और कमइल्मी पर घबराहट महसूस कर रहे हैं। उनका यह क़ौल दरअसल उनकी इन्किसारी (विनम्रता) है, वरना उन्होंने मोतियों का एक ज़ख़ीरा जो मुख़तलिफ़ शुअरा के ख़ज़ानों में बंद था, उसे बड़ी काविश (मेहनत) और दिक़्क़ते नज़र एक-एक मोती चुनकर निकाला और अब वो आप जौहरियों के सामने है। मुझे पूरा यक़ीन है कि उनकी यह काविश मुकम्मिल तौर पर कारआमद साबित होगी। कारेईन इससे न सिर्फ़ लुत्फ़ अंदोज़ होंगे बल्कि मुस्तफ़ीद भी होंगे।

ग़ज़ल के मुख़्तलिफ़ पहलुओं (मौज़ूआत) में एक पहलू (मौज़ूअ) ख़ुमरियात का भी है। चूंकि ग़ज़ल बक़ौले **'रफ़अत सरोश'** *'अगर शहंशाहों के इशरतक़दों में जाम लुटाती है तो गरीब की कुटिया में चराग़े उम्मीद बनकर झिलमिलाती है, अगर सदियों से पिसे हुवे आवाम के दुख की ज़बान बनती है, तो ज़माने की तेज़ निगाहों से निगाहें मिलाकर इंकलाबियों की ललकार बन जाती है।'* इस तरह ग़ज़ल के ख़जाने से चुना हुआ एक-एक मोती मिशअले राह बन जाता है।

चूंकि **छत्र पाल जी** ने अपने इंतख़ाब में तक़रीबन तमामतर अश्आर ग़ज़ल से ही चुने हैं, लिहाज़ा ग़ज़ल और उसकी हैअत (ढांचा) की चर्चा भी ज़रूरी है।

ग़ज़ल का अपना एक मख़सूस मिजाज़ है और उसके इसी मख़सूस मिजाज़ ने उसे बामे-उरूज़ पर पहुंचाया। मुख़्तलिफ़ दौर में दीगर असनाफ़े-सुख़न (साहित्यिक रूप) ने बहुत उतार-चढ़ाव देखे लेकिन ग़ज़ल के आँगन में कभी भी ज़वाल का साया दिखाई नहीं दिया। ग़ज़ल की इसी सिफ़त के पेशे-नज़र **'रशीद अहमद सिद्दीकी'** कहते हैं 'ग़ज़ल केवल सिनफ़े-सुख़न ही नहीं मेयारे-सुख़न भी है।' ग़ज़ल के इसी मख़सूस मिजाज़ ने उसे सेक्युलर बना दिया, जिसने 'ग़ालिब' से यह कहलवाया-

'वफ़ादारी बशर्ते-उस्तवारी अस्ले ईमाँ है,
मरे बुतख़ाने में काबे में गाड़ो बह्मन को ।'

या **वली** ने कहा था–
गर हुवा है तालिबे–आज़ादगी
बंदा मत हो सब्ह व ज़ुन्नार का ।

लफ्ज़े–ग़ज़ल मुग़ाज़िलत से मश्तक़ है, जिस के मानी महबूब से प्यार–मुहब्बत की बातें करना है। इसी मुनासिबत से जहाँ उसमें इश्क़ व मुहब्बत व उसकी वारदात जाम व मीना, हुस्न व इश्क़, शराब व शबाब वग़ैरा का ज़िक्र मिलता है, वहीं शैख़ व बरह्मन, दैर व हरम, कावा व बुतख़ाना, मस्ज़िद व मंदिर, कलीसा, दीन व ईमान, कुफ़्र, तसबीह, जुन्नार (जनेऊ) वग़ैरा का ज़िक्र भी वाफ़िर पैमाने पर मिलता है, जो ग़ज़ल के सेक्युलर मिजाज़ को अयां करता है।

कहा जाता है कि ग़ज़ल की इब्तदा क़सीदे के इब्तदाई जुज़ तशबीब से हुई। तशबीब में शायर इब्तदाई में माशूक़ की याद का या फ़र्हतबख़्श क़ुद्रती मंज़र का ज़िक्र करता था । बाद में इसी हिस्से को क़सीदे से अलग करके ग़ज़ल नाम दिया गया। इसके अलावा एक और रिवायत भी है, शायरी की इब्तदा तो इस्लाम से ही क़ब्ल अरबी में हो चुकी थी, जिसे 'अज़री' नाम से जाना जाता था, और उसमें ग़ज़ल की तमाम सिफ़ात मौज़ूद थीं । 'अज़री' का हर शेर मानी के एतवार से मुकम्मल हुवा करता था रदीफ़ व काफ़िये का एहतमाम किया जाता था । मौज़ू के एतवार से भी उसमें प्यार मुहब्बत की दर्द भरी दास्तानें हुवा करती थीं । हिज्र, फ़िराक़, तनहाई, दर्दमंदी, हुस्न व इश्क़, जाम व मीना, शराब व शबाब वग़ैरा तमाम लवाज़मात 'अज़री' में भी पाये जाते थे, लिहाज़ा उसे ही ग़ज़ल का नाम दिया गया।

यूँ तो ग़ज़ल की इब्तदा अरबी के ज़ेरे असर हुई, लेकिन ग़ज़ल के इर्त्क़ा में फ़ारसी शुअरा का बड़ा हिस्सा रहा है, बल्कि यह कहा जा सकता है कि सही मानों में फ़ारसी शुअरा ने ही ग़ज़ल को ग़ज़ल बनाया । ग्यारहवी सदी आते–आते तो ग़ज़ल ने एक मशहूर और मज़बूत सिनफ़ के तौर पर अपना लोहा मनवा लिया। ग़ज़ल फ़ारसी के ज़रिये दीगर ज़बानों के अदब में दाख़िल हुई, उनमें उर्दू अदब ने उसे ऐसा परवान चढ़ाया कि वह उर्दू अदब की आबरू बनकर रह गई।

बक़ौल **'डा०.ख़ुर्शीद आलम'** 'सच्ची बात तो यह है कि ग़ज़ल दुनिया की तमाम शायरी में लासानी और सबसे ज़ियादा लचकदार सिन्फ़े–सुख़न है।' और इसीलिए जाम व मीना, कैफ़ व मस्ती, शराब व शबाब के साथ–साथ ज़िन्दगी के दीगर मुख़तलिफ़ मसाइल को भी बरतने की उसमें मुकम्मल गुंजाइश है । वह तसव्वुफ़ की बात करती है, तो ज़िन्दगी से जुड़े मसाइल, इंसानियत, दिलनवाज़ी

मज़हबी रवादारी व सेक्युलरिज़्म को भी फ़रामोश नहीं करती। साथ ही रिवायत परस्ती, रियाकारी, मज़हबी दिखावा, मज़हब के नाम पर इन्सानों को मुख़्तलिफ़ फ़िकरों में बांटना वग़ैरा-वग़ैरा को इसने न सिर्फ लाइके-मलामत व मज़म्मत समझा है, बल्कि खुलेआम इनकी तर्दीद की है, मज़ाक़ उड़ाया है । इसने शेख़ और बरह्मन के दरम्यान कोई इम्तियाज़ नहीं बरता है । ग़ालिब का शेर देखिये-

कहाँ मैख़ाने का दरवाज़ा ग़ालिब, और कहाँ वाइज़ ?
पर इतना जानते हैं, कल वो जाता था कि हम निकले ।

इंशा ने कहा था-
ये जो महंत बैठे हैं राधा के कुंड पर,
अवतार बनके गिरते हैं परियों के झुंड पर ।

ग़ज़ल मज़ाहिब की यकसानियत की तबलीग़ करती है । बहरहाल इश्क़ व मस्ती, कैफ़ व ग़म, प्यार व मुहब्बत का ज़िक्र, जाम व मीना के बग़ैर अधूरा रहता है, इतना ही नहीं **ग़ालिब** ने तो यहाँ तक कह दिया है कि-

हर चंद हो मुशाहदा-ए-हक़ की गुफ़्तगू,
बनती नहीं है बादा-ओ-साग़र कहे बग़ैर ।

जो भी हो **'छत्र पाल जी'** ने ग़ालिब के क़ौल पर अमल करते हुये मुख़्तलिफ़ मक़ामात पर जहां कहीं भी उन्हें जाम व मीना दिखाई दिये, जमा करके आपकी ख़िदमत में पेश कर दिये, जो उनकी वुसअते-नज़र, उनके ज़ौक़ और फ़हम व फ़राहत की गीराई व गहराई का मज़हर तो है ही, साथ ही आपके ज़ौक़ की भी कसौटी है ।

प्रो. डॉ० निसार अहमद अंसारी
भारतीय भाषा संस्कृति संस्थान
गुजरात विद्धापीठ, अहमदाबाद
16 **अप्रैल** 2015

“मैख़ाने की मस्ती के मस्ताने हज़ारों हैं”

...तहरीर बनाम लेखा-जोखा

साहित्य प्रतिनिधि कलाओं में आता है। जो साहित्य, मानवीय या आगे बढ़कर जीवों के व्यवहार की छानबीन करता है वह कालजयी साहित्य बनकर उभरता है। साहित्य में नव रस वैज्ञानिक रूप से उन रसों (chemicals) की बात करते हैं, शरीर में, जिनकी उत्पत्ति होने से हमारा व्यवहार किसी ख़ास दिशा में नियन्त्रित होता है। उर्दू अदब में, विशेषकर, शेरो-शायरी ने इस दिशा में काफी गहराई से काम किया है । उर्दू की ये रचनाएं विराट सागर की तरह फैली हुई हैं । उर्दू की शेरो-शायरी के नायाब ख़जाने में से कई मोती चुनकर अदब के क़द्रदानों की ख़िदमत में पेश करने का लाज़वाब काम, एक शायर ज़नाब **छत्र पाल वर्मा** ने, पाठकों की सुविधा के लिए अपनी टिप्पणियां देकर, अपने संकलन **“मैख़ाने की मस्ती के मस्ताने हज़ारों हैं”** में प्रभावशाली तरीक़े से किया है ।

उर्दू शेरों-शायरी में शायरों ने अधिकतर, हक़ीकी बात कहने के लिए भी रूहानी-फ़लसफ़े की शैली को अपनाया है । शायद, यही सबब है कि उसमें अलंकारों/चमत्कारों (Figurative/Rhetorical) की बेमिसाल छटा दिखाई देती है।

प्रस्तोता ने, जाने-माने उर्दू फ़नकारों, उस्ताद उमर ख़य्याम, सर्व ज़नाब/साहब ..अकबर इलाहाबादी, अदीब सुलेमान, जिगर (मुरादाबादी), दाग़ दहेलवी, ताबिश सुल्तानपुरी, इब्राहीम ज़ौक़, रियाज़ ख़ैराबादी, शक़ील बदायुँनी, सबके अज़ीज़ साहिर लुधियानवी, सतनाम सिंह ख़ुमार, मुहतरमा शर्मिष्ठा पाण्डेय एवं हरिवंश राय बच्चन आदि और कई “गुमनाम” शायरों को बराबर याद कर, अपने फ़र्ज़ को पूरी निष्ठा के साथ निभाया है ।

किताब में पाठक की दिलचस्पी बढ़े, इसे ध्यान में रखकर, बहुत मशहूर कलाम, जो अधिकतर हिंदी (मुम्बइया) फिल्मों में प्रसिद्ध हो चुके हैं; भी वहां देखने को मिल जाएंगे।

यथा–

“हंगामा है क्यों बरपा, थोड़ी सी जो पी ली है,
डाका तो नहीं डाला, चोरी तो नहीं की है ।”–*अकबर इलाहाबादी*

जनाब हरिवंश राय बच्चन ने तो अपनी पुस्तक “मधुशाला” में, मैख़ाने को मंदिर, मस्ज़िद और मज़हबी इंसानी–बुतों से भी आला स्थान दिया–

मुसलमान और हिन्दू हैं दो, एक मगर उनका प्याला,
एक मगर उनका मदिरालय, एक मगर उनकी हाला,
दोनों रहते साथ, न जब तक मंदिर मस्ज़िद हैं जाते,
बैर बढ़ाते मंदिर–मस्ज़िद, मेल कराती मधुशाला ।

कुल मिलाकर ग़ज़लों का रसास्वादन करने वालों के लिए यह पुस्तक काफ़ी उपयोगी सिद्ध होगी, भाई **छत्र पाल वर्मा** बधाई के पात्र हैं ।

अभिनन्दन और शुभकामनाओं के साथ,

डॉ० किशोर वासवानी
पूर्व उप निदेशक,
केंद्रीय निदेशालय, भारत सरकार,
सम्प्रतिः मा. निदेशक; भारतीय भाषा संस्कृति सस्थान, गुजरात
विद्यापीठ, अहमदाबाद–14,
मो० 9979851770
4-04-2015

मुझे कुछ कहना है...

'मैख़ाने की मस्ती के मस्ताने हज़ारों हैं', आप जैसे इल्मबरदार, अदब पसंद, क़ाबिल कदरदानों के सामने लाते हुये मैं डरा हुआ महसूस कर रहा हूँ । और इसकी वज़ह भी है। मैंने इस तफ़्सीर में जिन अदबी शख़्सियतों के कलाम पर अपनी छोटी क़लम से कुछ कहने की जुर्अत की है, दोनों कानों पर हाथ लगाने के बाद भी उनका नाम लेते हुये ज़बान लड़खड़ा जाती है। पूरा इम्कान है कि मेरी क़लम भी लड़खड़ाई हो ।

एक बात और मैं पूरे ईमान के साथ कहना चाहता हूँ कि इस उनवान पर जो भी तफ़्सीर आप सबके सामने पेश कर रहा हूँ उसमें कभी भी और कहीं भी मेरी मंशा तन्क़ीद या तब्सिरा करने की नहीं रही। वैसे भी मैं कोई मुनक़्क़िद नहीं हूँ और न ही मेरी इतनी औक़ात भी है ।

इस तफ़्सीर में मेरा अपना कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी है वह आलिम शायरों के अश्आर के जल्वों का करिश्मा है, जल्वागरी है। गुज़िश्ता वक्त के नामबर अदीबों से लेकर आज तक के शोहरतयाफ़्ता शायरों ने वैसे तो हर इल्म, हर मौज़ूअ पर एक से बढ़कर एक अश्आर कहे हैं, पर मेरी सोच के उलट इस चुनिन्दा उनवान पर तो जैसे पहाड़ों पन्ने भरे मिले ।

पर यही उनवान तज्वीज करने के पीछे फ़क्त मेरी कच्ची सोच ही वज़ह थी और वो कच्ची सोच थी कि जिस बला को बुजुर्गों से लेकर आज के शरीफ़ लोग, सारे हकीम यहाँ तक कि हर पाक मज़हबी किताब हिकारत की नज़र से देखते हैं, इसके इस्तेमाल की मुख़ालफ़त करते हैं, तो लाज़िम है, अदीब भी इस पर ज़ियादा कुछ लिखने से गुरेज़ करते होंगे । पर मेरी ये बचकानी सोच बचकानी ही साबित हुई, और सिलसिला कुछ यूं चल निकला कि **'ज्यों ज्यों दवा की दर्द बढ़ता ही गया।'** इल्मबरदारों ने इस मौज़ूअ पर ख़ूब ही नहीं लिखा बल्कि क्या ख़ूब लिखा है, सुभानअल्लाह ।

और जिस उनवान पर कहे गए अश्आर को मैंने एक जगह लाकर इस तफ़्सीर के जरिये आप तक पहुँचने की कोशिश की है, उस शय को ईमान को बर्बाद करने का फ़ख़्र हासिल है । जिसके महबूब काफ़िर कहलाते हैं, फिर भी कमोबेश आधी दुनिया के लिए यह आबेख़िज्र से कम नहीं। और

यह महबूबा कोई और नहीं अंगूर की बेटी ही है, जिसे नामुराद शराब, सुरा, मै, मय, हाला और न जाने क्या क्या कहते हैं।

यहाँ मैं अपनी एक और नाकामयाबी का ज़िक्र करना जरूरी समझता हूँ कि तमाम कोशिशों के बाद भी मैं बाज़ अशूआर के कहने वालों का नाम हासिल न कर पाया, लिहाज़ा तफ़्सीर में शायर का नाम न लिखकर 'नामाल. ूम' से काम चलाना पड़ा। और इसके लिए उन तमाम आलिम शायरों से कान पकड़ कर मुआफ़ी चाहता हूँ ।

बताता चलूँ कि 'मैख़ाने की मस्ती के मस्ताने हज़ारों हैं' मेरी 'भाषाई हुड़दंग' के बाद, साया होने वाली दूसरी पुस्तक है, जो आपकी तन्क़ीद की मुंतज़िर है ।

हाँ, एक ही मौज़ूअ पर इतना मिर्च मसाला इकट्ठा करने के लिए मैंने गिलहरी की तरह जो मेहनत की है, उसका महनताना आप सब की दुआओं की शक्ल में मिल जाये तो मैं अपनी ख़ुशनशीबी और ईनाम समझूँगा।

छत्र पाल वर्मा

शुक्रिया

यह फ़क्त रस्म अदायगी भर नहीं है बल्कि मेरे दिल के कोने से निकली सदा है जो मुझे मेरे ज़रूरी फ़र्ज़ की याद दिला रही है कि मेरे उन तमाम चाहने वालों, मददगारों, को याद करते हुये उनका शुक्रिया अदा करना बहुत लाज़िमी है, जो इस तफ़्सीर को अंज़ाम तक पहुँचाने में जाने-अनजाने, क़दम-क़दम पर मेरी रहनुमाई करते रहे, हौसलाफ़्ज़ाई करते रहे।

मैं भारतीय रेलवे में मुलाज़िम हूँ और फ़िलहाल गुजरात में तैनात हूँ, लिहाज़ा, मेरे नसीब ने मुझे अदबी दुनिया के एक ऐसे आफ़्ताब, जिनका फ़िलवतन गुजरात ही है, के रूबरू कराया जिनका अदबी मर्तबा और दरवेशी रुआब किसी भी इल्मबरदार को कोर्निश करने के लिए मज़बूर कर सकता है । उनके छूते ही मेरा कायाकल्प होने लगा, और उन्हीं की सरपरस्ती में, मैं आप जैसे बड़े लोगों के सामने आने की हिम्मत जुटा पाया । लिहाज़ा 'शुक्रिया' जैसे अल्फ़ाज़ के बजाय मैं सरनिगूं उनकी क़दमबोसी करके ज़ियादा सुकून महसूस करता हूँ। और वो अज़ीम-तरीन शख़्सियत हैं मोहतरम **डाक्टर जनाब किशोर काबरा** साहब ।

मैं शुक्रिया अदा करता हूँ जनाब **निशीथ मोहन मिश्रजी** का, जो ख़ुद एक अदब पसंद हाकि़म हैं, और अदबी लोगों की इ़ज्जत करना बख़ूबी जानते हैं। आप ही पहले शख़्स हैं जिन्होंने मेरी तफ़्सीर जब कच्ची तहरीर की शक़्ल में थी, तफ़्सील से सुनने के बाद हौसला बढ़ाते हुए मुझे आगे बढ़ने के लिए उकसाया, यह कहते हुये कि इस तफ़्सीर के साया होने से अदब पसंद हल्कों को एक ही उनवान पर उन तमाम आलिम शायरों के कहे गए अश्'आर एक जगह हासिल हो जाएंगे, जो एक अच्छा काम है ।

मेरे हमकलाम जनाब **'डाक्टर ऋषिपाल धीमान 'ऋषि'** साहब जो देश के नामचीन ग़ज़लगो हैं, भी मुस्तहक़ हैं इस बात के कि उनको भी मैं अपना दिली शुकराना भेजूँ, जिन्होंने मेरी तफ़्सीर का बड़े दिल से ख़ैरमक़्दम करते हुये न केवल अपने कुछ अश्आर इस तफ़्सीर के लिए मुझे मुहैया करवाए बल्कि एक ऐसे आलिम शायर का बहुत पुराना मज़्मुआ मुझे दिया जिसने मुझे हौसला दिया कि जिस मक़्सद के लिए मैंने यह उनवान चुना, यह मज़्मुआ उस मक़्सद को और ज़ियादा पुख्ता करता है, और उस मज़्मुएका नाम है **'कलामे-ख़ाकी'**। 'कलामे-ख़ाकी' मरहूम जनाब **'बाबू मोहनलालजी'** का एक ऐसा मज़्मुआ है जिसमें उन्होंने सुरा और साक़ी जैसे अल्फाज़ इस्तेमाल करते हुये वही संदेश दिया है जो जनाब **हरवंशराय बच्चन** साहब ने 'मधुशाला' के ज़रिये दिया है । मरहूम जनाब 'बाबू मोहनलाल जी' ने अपना तख़ल्लुस 'ख़ाकी' चुना था, और तख़ल्लुस से ही इस बुजुर्ग आलिम शायर की शख़्सियत का अंदाज़ा लग जाता है। ख़ाकी यानि कि ख़ाक से पैदा, ख़ाक में मिला हुआ है। किसी और में इतना हौसला जो इस तरह का तख़ल्लुस चुने? ख़ैर जनाब 'बाबू मोहनलालजी' 'ख़ाकी' साहब की बहुत ही ऊंचे मेयार की शायरी से आपको लुत्फ़ंदोज़ तो कराऊँगा ही, पहले जनाब 'डाक्टर ऋषिपाल धीमान 'ऋषि' साहब का शुक्रिया तो अदा कर लूँ, इन तमाम तरह की मदद व प्रूफ़ रीडिंग के लिए, उनका कीमती वक़्त देने के लिए।

कुछ अर्से पहले जब मैं अहमदाबाद में अदबी दुनिया से नहीं जुड़ा था, मेरे पहले साया होने वाले मज़्मुए 'भाषाई हुड़दंग' को पढ़कर, एक अच्छे उस्ताद की तरह, मेरे लिखने को एक नई दिशा देने वाले जनाब **'राम किशोर गौतमजी'** का भी मैं तहेदिल से शुक्रिया अदा करता हूँ ।

मेरे इस प्रयास पर, अपने व्यस्ततम क्षणों में से कुछ पल निकालकर अपनी बेबाक राय रखने के लिए मोहतरम जनाब **डा० किशोर वासवानी साहब** व **प्रो. डा०. निसार अहमद अंसारी** साहब का भी मैं तहेदिल से शुक्रिया अदा करता हूँ।

एक और शख़्सियत का शुक्रिया किए बिना शायद मेरा शुकराना मुकम्मल न हो, लिहाज़ा उनको भी बहुत-बहुत शुक्रिया। और इस शख़्सियत का नाम है **'श्रीमती रेखा वर्मा'**, जो सिर्फ मेरी शरीक़-ए-हयात ही नहीं बल्कि मुझे

तमाम इंसानी झंझटों से बचाकर रखते हुये मुझे लिखने के लिए वक़्त मुहैया कराती रहीं। हालांकि उनका मेरी क़लमकारी के मेयार से कुछ ज़ियादा सरोकर नहीं रहता, फिर भी जब-तब मेरी क़लमकारी पर उनकी वाज़िब और गैरवाज़िब तन्क़ीद मुझे एक ख़ुशनुमा माहौल मयस्सर कराती रहती है ।

मैं शुक्रगुजार हूँ उन तमाम मेगजीन्स, पोकेटबुक्स, रिसालों, मेरे अज़ीज़ों और इंटरनेट का, जहां से मैंने ये अश्आर इकट्ठा किए, और उन्हें कागज पर इकट्ठा करके आप तक पहुंचा पाया।

-छत्र पाल वर्मा

'ये किसने कह दिया, गुमराह कर देता है मैख़ाना,
ख़ुदा के फ़ज़ल से इसके लिए मस्ज़िद हैं, मंदिर हैं ।'

क़ब्ल इसके कि 'मैख़ाने की मस्ती के मस्तानें हज़ारों हैं' पर तफ़्सीर शुरू करूँ, मैं आपको ये बताना अपना फ़र्ज़ समझता हूँ कि आपको ये बताया जाए कि यह उनवान मैंने क्यों और कैसे तज्वीज़ किया।

मुझे उन मोहतरम ग़ज़लगों का नाम तो नहीं मालूम था, (बहुत बाद में जान पाया कि यह कलाम जनाब अकबर इलाहाबादी साहब का है) पर उनका कलाम मुझे बहुत ही मुतास्सिर करता था, और वो इसलिए कि आपने किस बेबाकी से आपने कलाम के ज़रिये दुनिया वालों को फटकार लगाई है–

'हंगामा है क्यों बरपा, थोड़ी सी जो पी ली है,
डाका तो नहीं डाला, चोरी तो नहीं की है ।'

जनाब इतने पर ही नहीं रुके, बल्कि दो क़दम आगे बढ़कर अपनी मुराद भी जमाने के सामने रख दी–

'उस मय से नहीं मतलब, दिल जिससे हो बेगाना,
मक़सूद है उस मय से, दिल ही में जो खिंचती है ।'

आह! क्या हौसला है, क्या नज़रिया है? छोड़ा नहीं। उनके आगे वाले शेर में आए तंज़ पर भी ग़ौर फ़र्मा लें–

'सूरज में लगे धब्बा, क़ुद्रत के करिश्मे हैं,
बुत हमको कहें काफ़िर, अल्लाह की मर्ज़ी है ।'

अगरचे यही एक तंज़ होता इस क़लाम मे तो ग़नीमत थी, पर बुलंद हौसला शायर ने बेहद मौज़ूँ तरीक़े से ईमान के सरपरस्तों की बख़िया उधेड़ते हुये यह भी कह डाला कि–

नातजुर्बाकारी से, वाइज़ की ये बातें हैं,
इस रंग को क्या जानें, पूछो जो कभी पी है ।

अल्ला–अल्ला, ख़ैर–सल्ला ।

तो,

आगाह करता हूँ, इस तफ़्सीर के पढ़ने वालों को, कि जिस शय को मुद्दआ बनाकर मैंने क़लम चलाने की जुर्अत की है, उसे ईमान को बर्बाद करने का फख्र हासिल है। जिसके महबूब काफ़िर कहलाते हैं, फिर भी कमोबेश आधी दुनिया के लिए यह आबेखिज्र से कम नहीं। और यह महबूबा और कोई नहीं अंगूर की बेटी ही है जिसे नामुराद शराब, सुरा, मै, मय, हाला और न जाने क्या क्या कहते हैं।

ख़ैर जो भी हो मय से मुतल्लिक़ जितने भी नाम हैं, सबों ने इनकी ज़ानिबदारी की है। इतना ही नहीं बहुत से बुज़ुर्ग अदीबों ने तो इसे जानेउक़्बा (नेक अमल) फ़र्माया फिर चाहे वह मय हो, मयख़ाना हो, मयख़्वार हों, साक़ी हो, रिंद हो, सुबू हो, शैख़ हो, ज़ाहिद हो, वाइज़ हो। बहुतों ने तो मैख़ाने को मंदिर–मस्ज़िद से भी ऊँचा मर्तबा दे रखा है ।

मशहूर शायर मरहूम जनाब **हरवंश राय बच्चन जी** ने तो इसकी तारीफ़ में पूरी की पूरी एक पुस्तक **'मधुशाला'** ही लिख डाली, जिसे कमोबेश, अदबी तबके का हर आम–ओ–ख़ास कम से कम एक बार तो पढ़ ही चुका होगा। कहते हैं मधुशाला उनके जीवनदर्शन को बयान करता हुआ ऐसा मजुमआ है जो हर इन्सान के जीवन पर हूब्हू ख़रा उतरता है। मधु, मधुशाला, हाला, प्याला, मतवाला जैसे प्रतीकों के जरिये बच्चन साहब ने उस परवरदिगार से नज़दीकियाँ बढ़ाने और उसके बताए रास्तों पर चलने का पैग़ाम बड़ी ही ख़ूबसूरती से दिया है। शायरी के एक अहम तरीक़ों में से एक तरीक़ा 'व्यंजना' है। 'व्यंजना' के मायने हैं कि असल बात न कहते हुये भी उस बात का एहसास प्रतीकों के ज़रिए करा दिया जाय। इसी मज़्मुए की कुछ ऐसी रुबाइयाँ आपके सामने पेशेख़िदमत हैं जो इस मजुमए के पूरे लब्बेलुआब को बयां कर देती हैं, और वह भी जो इस तफ़्सीर की इब्तिदा में कहा गया है कि –

'ये किसने कह दिया, गुमराह कर देता है मैख़ाना,
ख़ुदा के फ़ज़ल से इसके लिए, मस्ज़िद हैं, मंदिर हैं ।'

तो आप भी लुत्फ़ उठाएँ और अमल करें उस पैग़ाम पर, जो **बच्चन साहब** दे कर गए हैं–

अपने युग में सबको अनुपम, ज्ञात हुयी अपनी हाला,
अपने युग में सबको अद्भुत, ज्ञात हुआ अपना प्याला ।
फिर भी वृद्धों से जब पूछा, एक यही उत्तर पाया,
अब न रहे वो पीने वाले, अब न रही वो मधुशाला ।

()()()

एक बरस में एक बार ही, जलती होली की ज्वाला,
एक बार ही लगती बाज़ी, जलते दीपों की माला ।
दुनिया वालों किन्तु किसी दिन, आ मदिरालय में बैठो,
दिन को होली रात दिवाली, रोज मनाती मधुशाला ।

()()()

मुसलमान और हिन्दू हैं दो, एक मगर उनका प्याला,
एक मगर उनका मदिरालय, एक मगर उनकी हाला ।
दोनों रहते साथ, न जब, तक मंदिर–मस्ज़िद हैं जाते,
बैर बढ़ाते मंदिर–मस्ज़िद, मेल कराती मधुशाला ।

()()()

यम आएगा साक़ी बनकर, साथ लिए काली हाला,
पीना होश में फिर आगे का, सुर और सुध ये मतवाला ।
ये अंतिम बेहोशी, अंतिम साथी, अंतिम प्याला है,
पथिक प्यार से पीना इसको, फिर न मिलेगी मधुशाला ।

()()()

मेरे अधरों पर हो अंतिम, वस्तु न तुलसी दल प्याला,
मेरी जिह्वा पर हो अंतिम, वस्तु न गंगाजल हाला ।
मेरे शव के पीछे चलने, वालो याद इसे रखना,
राम नाम है सत्य न कहना, कहना सच्ची मधुशाला ।

()()()

मेरे शव पर वो रोये, हो जिसके आँसू में हाला,
आह भरे वो, जो हो सुरभित, मदिरा पीकर मतवाला ।
दें मुझको वे कंधा, जिनके, पद, मद डगमग होते हों,
और जलूँ उस ठौर जहां पर, कभी रही हो मधुशाला ।

()()()

और चिता पर जाए उढ़ेला, पात्र न घृत का, पर प्याला,
कंठ बंधे अंगूर लता में, मद्ध न जल हो, पर हाला,
प्राण प्रिये यदि श्राद्ध करो तुम, मेरा तो ऐसे करना,
पीने वालों को बुलवाकर, खुलवा देना मधुशाला ।

और जनाब जिन क़सीदों का ज़िक्र इस तफ़्सीर में होगा उनके करने और कहने वाले वो लोग हैं, जिनका इस इल्म में कोई सानी नहीं है ।

आलिम शायरों ने मय का मर्तबा बढ़ाते हुये जिन अल्फ़ाज़ का इस्तेमाल किया है, मुँह में पानी आता है । पता नहीं उन आलिमों ने इसको भोग कर लिखा है या लिखकर भोगा है, जो भी हो, क्या ख़ूब कहा और क्या ख़ूब लिखा है? वाह-वाह, वल्लाह, इरशाद, अल्लाह, लिल्लाह, मर्हबा...

तो क्यों न बिस्मिल्लाह करें मशहूर रुबाइगो **उस्ताद उमर ख़य्याम साहब** से, जो कहा करते थे-

ज़िन्दगी काहे की जो इस तरह बेकैफ़ जिये,
मरने वालों ने भी सामान कुछ न साथ लिए ।
मौत का डर है तुझे, इसलिए मय से तौबा,
मौत तो आनी है नादान, पिये या न पिये ।

अब **'अदीब सुलेमान साहब'** से आप ही निबटिए, वो तो इतने गुस्से में हैं कि कहते फिर रहे हैं–
अय शैख़ जो बताए, मए इश्क़ को हराम,
ऐसे के लगाए दो, भिगो कर शराब में ।

वे इतने से ही कहाँ मानने वाले थे, फ़र्माते हैं –
एक पल को मैं जो ख़ुदा हो जाऊं,
सारी दुनिया को अंगूर का पानी दे दूँ ।

ऐसा नहीं है सिर्फ़ **अदीब सुलेमान** साहब ही अंगूरी के मुश्ताक़ हैं। जनाब **'वाली आसी'** साहब तो इसमें ज़िंदगी तसव्वुर करते हैं –
हमने शराब लेके हवा में उछाल दी,
फिर ज़िन्दगी की यूँ न, किसी ने मिसाल दी ।

पर इस मूँ लगी के ख़तरे भी हज़ार हैं। अब देखिये न **जिगर** साहब को मलाल है कि–
जान कर मिनजुमला–ए–ख़साना–ए–मयख़ाना मुझे,
मुद्दतों रोया करेंगे, ज़ाम–ओ–पैमाना मुझे ।
नग–ए–मयख़ाना था, साक़ी ने ये क्या कर दिया,
पीने वाले कह उठे, पीर–ए–मयख़ाना मुझे ।
नग–ए–मयख़ाना = मैख़ाने का नगीना, सबसे अजीज़,
पीर–ए–मयख़ाना = शराबख़ाने का प्रबन्धक

मोहतरम **जिगर** साहब का एक ऊँचे मेयार का ओबजरवेशन

देखें–

वही मयख़ाना–ओ–सेहबा, वही साग़र वही शीशा,
मगर आवाज़–ए–नोशानोश मद्धम होती जाती है ।

सेहबा = लाल रंग की शराब, नोशानोश = बार–बार शराब पीने वाला

आप नाम से ही **'जिगर'** नहीं हैं, इनके जिगर का रुआब देखते ही बनता है, जब वे ज़ाहिद को तंज़िया लहज़े में फटकार लगाते हैं–

हमको मिटा सके ये, ज़माने में दम नहीं,
हमसे ज़माना ख़ुद है, ज़माने से हम नहीं ।
ज़ाहिद कुछ और हो न हो मयख़ाने में मगर,
क्या कम ये है, के फ़ित्ना–ए–दैर–ओ–हरम नहीं?

आप जनाब **'दाग़ देहलवी'** साहब के कलाम से दो–चार तो ज़रूर हुये होंगे, तो फिर यह भी मानते होंगे कि हुज़ूर देहलवी साहब का उर्दू अदब में मुख़्तलिफ़ मक़ाम है, आप फ़र्माते हैं–

ज़ाहिद शराबे–नाब की तासीर कुछ न पूछ,
अक़्सीर है जो हल्क़ से नीचे उतर गई ।

और अपनी इस बात को वे कुछ इस तरह कह कर मनवाने पर तुले हैं–

साक़िया तश्नगी की ताब नहीं,
ज़हर दे दे अगर शराब नहीं ।

अब भी आप **देहलवी साहब** को न पहचान पा रहे हों तो याद करें एक मशहूर शेर जो अक़्सर मज़लिसों की शान बढ़ाता रहा है, हर आमोफ़हम कभी न कभी इसे सुनाता हुआ मिल जाएगा–

ज़ाहिद शराब पीने दे, मस्ज़िद में बैठ कर,
या वो जगह बतादे, जहां पर ख़ुदा न हो ।

ज़नाब **ताबिश सुल्तानपुरी** साहब भी **देहलवी साहब** की ताईद

करते हुये कहते हैं–

जहाँ वाले न देखें, इसलिए छुप–छुप के पीता हूँ,
ख़ुदा का ख़ौफ़ कैसा, वो तो इसियाँ–पोश है साक़ी ।
इसियाँ–पोश = पापों को माफ करने वाला

ऐसा नहीं है कि ऐसा मानने वाले सिर्फ़ **ताबिश साहब** ही हैं, **बिस्मिल देहलवी** साहब ने तो यहाँ तक कह दिया है–

ख़ुदा का ख़ौफ़ या ज़ाहिद को या ज़रदार को होगा,
शराबी इससे मुस्तग़्नी हैं, वो बेबाक होते हैं ।
मुस्तग़्नी = अनिक्षुक

जनाब **इब्राहीम ज़ौक़** साहब ताना मारते हुये **ज़ाहिद** से पूछते हैं–

ज़ाहिद शराब पीने से काफ़िर हुआ मैं क्यूँ,
क्या डेढ़ चुल्लू पानी में, ईमान बह गया ?

मशहूर शायर जनाब **रियाज़ ख़ैराबादी** साहब के दुख़्तरे–अंगूर के रुतबे पर इन अश्आर को देखना भी ग़ैरवाज़िब न होगा–

मैख़ाने में मज़ार हमारा अगर बना,
दुनिया यही कहेगी कि जन्नत में घर बना ।

()()()

मेरी शराब की क्या क़द्र तुझको अय वाइज़,
जिसे मैं पीके दुआ दूँ, जन्नती हो जाए ।

जनाब **शकील बदायूँनी** साहब को तो इबादत से पहले ही मय की ज़रूरत पेश आती है–

अज़ाँ हो रही है, पिला ज़ल्द साक़ी,
इबादत करूँ आज मख़मूर हो कर ।

इसकी ख़ुमारी से ज़नाब **सतनाम सिंह ख़ुमार** साहब भी नहीं

बच पाये, वे ख़ुमारी में ही सदा देते हैं–

एक बोतल शराब हो जाए,
ज़िन्दगी कामयाब हो जाए ।

ख़ुमार साहब को मस्ज़िद जाने से कोई गुरेज़ नहीं है, पर वे, वहाँ जाने से पहले मैख़ाने की हाज़िरी ज़रूरी समझते हैं–

तेरी भी दावत हमें, नासेह है कुबूल,
आएंगे मस्ज़िद में, मैख़ाने के बाद ।

एक **नामालूम** शायर का क़ौल देखिये–

देखने में शराब पानी है,
इसमें पोशीदा ज़िंदगानी है ।

और भी–

ज़िन्दगी का सुरूर पाओगे,
पीकर हर ग़म भूल जाओगे ।

और, शायद एक और **नामालूम** शायर अपने गमों को भुलाने में मशरूफ़, शिकायत करते हैं–

मैख़ाने सज़े थे, ज़ाम का था दौर,
ज़ाम में क्या था किसने किया था ग़ौर?
ज़ाम में ग़म था, मेरे अरमानों का,
और सब कह रहे थे, एक और, एक और ।

एक और **'नामालूम'** साहब का फ़लसफ़ा भी क़ाबिलेग़ौर है–

ज़िन्दगी के सवालों का ज़वाब ढूँढ़ता हूँ,
दर्द को कम कर सके, वो शराब ढूँढ़ता हूँ ।
वक़्त के हाथों एक मज़बूर शख़्स हूँ मैं,
जो जीने का दे बहाना, वो किताब ढूँढ़ता हूँ ।

लगता है इन साहब को किसी ने ये कह कर बरगलाया है–

आजकल रोज़ है मैख़ाने में आना-जाना,
तुमको साक़ी से मिला देंगे, तुम आओ तो सही ।
क्या कहा, ग़म ने सता रक्खा है, तौबा-तौबा,
ग़म को थोड़ी सी पिला देंगे, तुम आओ तो सही ।

जनाब **सुरेन्द्र मलिक 'गुमनाम'** साहब भी ग़म भुलाने के लिए मैख़ाने जाने की तैयारी में हैं-

ये किसने मुझे मस्त नज़रों से देखा,
लगे ख़ुद-ब-ख़ुद ही क़दम लड़खड़ाने ।
चलो तुम भी 'गुमनाम' अब मैकदे में,
तुम्हें दफ़्न करने हैं, कई ग़म पुराने ।

इनकी मयफ़रोशी तो देखें-

सारी दुनिया हो मैकदा या रब,
सारा पानी शराब हो जाए ।

कुछ लोग साफ़गो होते हैं, जनाब **अमीर लखनवी** भी उन्हीं में से एक हैं, आप फ़र्माते हैं-

शीशा रहे बगल में, जामे शराब लब पर,
साक़ी यही मज़ा है, दो दिन की ज़िन्दगी का ।

सूफ़ी **उमर ख़ैयाम** का क़ौल है कि मय, बिगड़ी बनाने और कश्ती पार लगाने का माद्दा भी रखती है, आप कह गए हैं-

यह जाम है हाँ रूह को इनाम तेरा,
बन जाएगा हर बिगड़ा काम तेरा ।
तूफ़ाने-हवादिस में अरे पाये पनाह,
कम, नूह की कश्ती से नहीं जाम तेरा ।

हवादिस = दुर्घटना, नूह = जलजले के समय के एक पैगंबर

ऐसा नहीं है कि ये इल्मी लोग एकदम ही खुल कर मय की

ज़ानिबदारी बेख़ौफ़ करने का माद्दा रखते हों, पर करते ज़रूर हैं, भले ही दबी ज़बान से ही सही। **श्रीमान प्रकाशनाथ 'परवेज़'** साहब का ही बहाना देख लें–

नित नए जख़्म दिल के सींता हूँ,
जीना मुश्किल है, फिर भी जीता हूँ ।
खा न जाए मुझे ग़मे–हस्ती,
एहतियातन शराब पीता हूँ ।

जनाब **नासिर अख़्तर** साहब का बहाना भी पेशे नज़र है–

है लत बुरी शराब की, ये कैसे मान लूँ ?
सीखी है ग़म भुलाने की आदत शराब से ।

ज़लाल साहब की भी सुनिए–

यूँ तो पीता नहीं, पी लेता हूँ गाहे–ब–गाहे,
वो भी थोड़ी सी, मज़ा मुँह का बदलने के लिए ।

एक और बहाना, जनाब **'साबिर' अबोहरी** साहब का–

जो साक़ी की ख़ातिर ही पी लूँ तो पी लूँ,
नहीं शौक़ वरना मुझे मयकशी का ।

अब जनाब **रईस 'नियाज़ी'** साहब की मासूमियत पर कौन न मर मिटे–

कल तो तौबा से तोड़ डाला साग़र,
आज साग़र से तोड़ डाली तौबा ।

मोहतरम **हफ़ीज़ जौनपुरी** साहब को दाद दीजिये कि कितनी साफ़गोई से आप कुबूल करते हैं–

बाद–ए–तौबा भी वही प्यास है मैख़ाने की,
गर्दिश आँखों में फिरा करती है पैमाने की ।

अपनी शायरी को एक ख़ास अदा से पेश करने वाले हमारे दौर के आलिम शायर जनाब **राहत इंदौरी** साहब पता नहीं आज क्यों मायूसी भरी बातें कर रहे हैं–

आँसुओं और शराबों में गुज़र है अब तो,
मैंने कब देखी थी, बरसात मुझे होश नहीं ।

जिन्हें अँधेरे–उज़ाले डर लगता है, उनमें से जनाब **वामिक जौनपुरी** साहब एक हैं, यहाँ तक कि वे मैख़ाने और मस्ज़िद के बीच के फ़ासिले को इस डर से पार नहीं करते क्योंकि वह रास्ता बहुत ही सुनसान है–

मैख़ाने को छोड़ हम, कहवा से गुज़रते,
वो राह मगर कहते हैं, सुनसान बहुत है ।

मयग़ुसारों के तमाम बहानों में से एक आम बहाना–

आज पी हो तो, साक़ी हराम शै पी हो,
कल शब की पी हुई, मय का ख़ुमार बाक़ी है ।

इससे बड़ा दूसरा बहाना ही कोई और नहीं हो सकता है जो **अदम** साहब को सूझा है–

सहर के वक़्त मय पीने से मुझको रोक मत नासेह,
कि सज़्दे के लिए दिल में, जरा सा सिद्क़ लाना है ।
सिद्क़ = सच्चाई

अदम साहब 'बड़ा लुत्फ़ था जब कुँवारे थे हम तुम' की तर्ज़ पर फ़र्माते हैं–

जब गर्दिशों में जाम थे,
कितने हसीं अय्याम थे ।
अंज़ाम की क्या सोचते,
नावाक़िफ़े अंज़ाम थे ।

इसके बाद तो **अदम** साहब पूरे मूड में आ गए–

सुबु को दौर में लाओ, बहार के दिन हैं,
हमें शराब पिलाओ बहार के दिन हैं ।
मिला के शबनम में, रंगो–निख़त–ए–गुल,
कोई शराब बनाओ, बहार के दिन हैं ।

निख़त = सुख

मोहतरम **जफ़र** साहब की साफ़गोई भी देखने लायक है–

वो बेहिसाब जो पी के कल शराब आया,
अगरचे मस्त था मैं, पर मुझे हिज़ाब आया ।

यक़ीन करें दुख़्तरे–अंगूर के दीवानों की एक लंबी फ़ेहरिश्त है, जिन्होंने इसे ज़िन्दगी व बंदगी माना है और तादम मानते रहे, यहाँ तक कि इसके लिए वे नासेहों, ज़ाहिदों, वाज़िदों, शैख़ों, पीर, मौलवियों से भी भिड़ गए और इसकी मोहब्बत को कुफ़्र कहने वालों को खरी खोटी सुनाने से भी नहीं चूके ।

बानगियाँ देखें–

फैज़ अहमद फैज़ साहब, नासेहों से इतने आज़िज़ आ चुके थे कि उनके मुंह से निकल गया–

ख़ैर दोजख़ में मय मिले या न मिले,
शैख़ साहब से जाँ तो छूटेगी ।

जनाब **ज़िगर मुरादाबादी** साहब का हौसला तो देखिये, उन्होंने तो वाइज़ को चेलेंज दे डाला–

किधर से बर्क़ चमकती है देखें अय वाइज़,
मैं अपना जाम उठाता हूँ, तू किताब उठा ।

अब अंगूरी के सदके शैख़ो–बरहमन की खिल्लियों का लुत्फ़ लिया जाए–

मजाज़ साहब शिकायत करते हैं–
वाइज़ ओ–शैख़ ने सर जोड़ कर बदनाम किया,
वरना बदनाम न होती, मय–ये–गुलफ़ाम अभी ।

मोहतरम **अज़ीज़ मियाँ** फर्माते हैं–
फ़सले–गुल है, शराब पी लीजिये,
शरम कैसी जनाब पी लीजिये ।
मियाँ जो पिये छुपके वो मुनाफ़िक़ है,
बेतकल्लुफ़ शराब पी लीजिये ।
आगे चलकर हिसाब होना है,
इसलिए बेहिसाब पी लीजिए ।
मुनाफ़िक़ = जिसके मुंह पर कुछ और हो, और दिल में कुछ और

एक और **नामालूम** शायर भी इसी तरह के किसी हिसाब की बात करते सुने गए–
ये ज़वानी गुलाब हो जाए,
मयस्सर अगर शराब हो जाए ।
इसी मदहोश–ओ–मस्ती में,
आओ फ़रिश्तो, हिसाब हो जाए ।

अच्छा एक बात और याद दिलाता चलूँ कि मय के शौक़ीन हमेशा जो भी कहेंगे, सच ही कहेंगे और सच के सिवाय कुछ नहीं कहेंगे–
फिर हाथ में शराब है, सच बोलता हूँ मैं,
ये चीज़ लाज़वाब है, सच बोलता हूँ मैं ।
गिन कर पियूँ मैं जाम तो, होता नहीं नशा,
मेरा अलग हिसाब है, सच बोलता हूँ मैं ।
साक़ी यक़ीं न आए तो गर्दन झुका के देख,
शीशे में माहताब है, सच बोलता हूँ मैं ।

मोहतरम **सुरेन्द्र चतुर्वेदी** साहब का तंज देखें–

महफ़िल में दोस्तों की, चलो दिल ने ये कहा,
अपनों से चोट खाये, कई रोज़ हो गए ।
ये मयकदे से सोच कर, बाहर निकल गए,
बिन पिये लड़खड़ाए, कई रोज़ हो गए ।

मोहतरम **ज़ौक़** साहब की बात तो आप मज़ाक में नहीं ले सकते हैं–

ज़ौक़ जो मदरसों के बिगड़े हुये हैं मुल्ला,
उन्हें मैख़ाने ले आओ, सँवर जाएंगे ।

कितनी नफ़ासत से समझाते हैं जनाब **अर्श मलीहाबादी** साहब–

ख़ुश्क बातों में कहाँ अय शैख़ कैफ़े ज़िंदगी,
वो तो पीकर ही मिलेगा, जो मज़ा पीने में है ।

फ़ैज़ रतलामी साहब को सुनें–

चेहरा गुलाब की तरह, वाइज़ का खिल उठा,
जब लब पे जिक्रे–बादा–ये गुलफ़ाम आ गया ।

जनाब **ख़ैराबादी** साहब आज वाइज़ को छोड़ने के मूड में नहीं हैं, उन्होंने तो झड़ी ही लगा दी–

कमबख़्त ने शराब का जिक्र कुछ इस कदर किया,
वाइज़ के मुँह से आने लगी बू, शराब की ।

और–

धोख़े से पिला दी थी इसे, दो घूंट,
पहले से बहुत नर्म है, वाइज़ की ज़बां अब ।

और–

कर्ज़ लाया है कोई वेश बदल कर शायद,
मयफ़रोशों का है, वाइज़ से तक़ाज़ा कैसा?

दाग़ साहब के दागे हुये गोले भी देखें, वाज़िदो–ज़ाहिद कैसे झेलते हैं, आइये लुत्फ़ लेते हैं –

वाइज़ बड़ा मज़ा हो, अगर यूं अज़ाब हो,
दोज़ख़ में हो पाँव, हाथ में जामे शराब हो ।

और–

लुत्फ़े–मय तुझसे क्या कहूँ ज़ाहिद,
हाय कमबख़्त तूने पी ही नहीं ।

और–

मय पी तो सही, तौबा भी हो जाएगी ज़ाहिद,
कमबख़्त क़यामत, अभी आई नहीं जाती ।

हा–हा–हा–

मैकशो हज़रते ज़ाहिद की तलाशी लेना,
कि छुपाए हुये वो जाम लिए जाते हैं ।

जनाब **'ऐश' देलहवी** साहब की शैख़ साहब से इंसाफ़ करने की दरख़ास्त कि–

जुर्अत–ए–दिल मय–ओ–मीना है, वो ख़ुदकाम भी है,
बज़्म अग़्यार से खाली भी है, और शाम भी है ।
शैख़जी आप ही इंसाफ़ से फ़र्माएँ भला,
और आलम में कोई ऐसा भी बदनाम भी है ?
अग़्यार = रकीब, प्रतिद्वंदी, ख़ुदकाम = स्वच्छंद, निरंकुश

जनाब **साहिर लुधियानवी** साहब को इस बात का मलाल है कि अदने से दिलफ़राश राज़ की जानकारी के एवज़ में उन्हें वाइज़ को सलाम ठोकना पड़ा–

ये पूछने को रात, था, साक़ी के साथ कौन,
वाइज़ से नामुराद को, करना पड़ा सलाम ।

पता नहीं इतने पते की बात कहने वाले **फ़फूँदवी** साहब क्यों अपने नाम के साथ **अहमक़** लगाए हुये हैं, ख़ैर **अहमक़ फ़फूँदवी** साहब की पते की राय से आपको दो चार कराता हूँ, आप फ़र्माते हैं–

उसको भी कभी अंजुमने–मय में बुलाओ,
सब होते हैं बेचारा वाइज़ ही नहीं होता ।

मस्तान बीकानेरी साहब को तो टोका–टाकी से सख़्त एतराज़ है, ख़ासतौर से जब वो किसी ख़ास काम के लिए निकले हों–

ज़ाहिद न टोक हमको सरे–राहे मैकदा,
इस वक़्त जा रहे हैं किसी ख़ास काम से ।

जनाब **मख़मूर सीतापुरी** साहब सिर्फ़ नाम के ही मख़मूर नहीं हैं, बाक़ायदा ताव देकर फ़र्माते हैं–

आज मैख़ाने में देखा, शैख़जी को सिरनिगूं,
सामने मख़मूर के वो, सिर उठा नहीं सकते ।

साग़र निज़ामी साहब की वाइज़ को लगाई गई फटकार सुनना चाहेंगे? –

यह मैकदा है तेरा मदरसा नहीं वाइज़,
यहाँ शराब से इंसान बनाए जाते हैं ?

बेकल उत्साही साहब के उत्साह का क्या कहना, इतने उत्साही हैं कि बात पेट में पचा ही नहीं पाते हैं, उत्साह ही उत्साह में उन्होंने सभी को बता दिया कि–

रात फिर नासेह, बालानोशों को समझाने गए,
मैकदे से निकले तो मुश्किल से पहचाने गए ।

नज़्म मुज़फ़्फ़रनगरी साहब भी कुछ इसी तरह से कहते सुने गए, पर उनके लहज़े में हिमाक़त कम हिमायत ज़ियादा झलकती है, फिर

भी बात तो बात है, वह भी सीधी सच्ची–

पीने–मैख़ाना से शायद उन्हें होगा कुछ काम,
वरना क्यूँ आते इधर शैख़जी हरम रात गए ?

अरे! **अर्श मलसियानी** साहब तो वाइज़ों के वाइज़ निकले, वाह क्या ख़ूब नसीहत दी उन्होने शैख़ साहब को–

पीकर तू जरा सैरे–जहाँ कर अय शैख़,
तू ढूँढ़ता है जिसको, वो जन्नत है यहीं ।

जनाब **हीरालाल 'फ़लक़'** साहब तो ज़ाहिद के मैख़ाने में आने का बाक़ायदा इस्तिक़बाल करते हैं, और उनके वहाँ आने को बिल्कुल ज़ायज़ ठहराते हुये उन्हें तसल्ली देते हुये कहते हैं–

ख़ुशा–ए–हज़रते ज़ाहिद, जो मैख़ाने में आ बैठे,
ख़ुदा की जुस्तजू में, ठोकरें खाने कहाँ जाते ?

फ़लक़ साहब की हाँ में हाँ मिलाते हुये जनाब **क़सर देहलवी** साहब को तो ज़ाहिद के मैख़ाने में आने की इतनी ख़ुशी है कि उन्हें वहाँ की बेजान चीजें भी उछलती–कूदती, ख़ुशियाँ मनाती नज़र आने लगीं–

बोतल खुली जो हज़रते ज़ाहिद के वास्ते,
मारे ख़ुशी के काग भी, दो गज़ उछल गया ।

क्या खूब पकड़ा ज़ाहिदजी को, **तमन्ना अम्बालवीजी** ने, उन्होंने ज़ाहिद से पूछा–

जब पी ही नहीं तूने शराब अय ज़ाहिद,
फिर क्यों कहता है ख़राब अय ज़ाहिद ?

अस्सी–नब्बे के दशक में अदबी मुशायरों में जनाब **ख़ुमार बाराबंकवी** साहब ने जितनी वाहवाही, जितनी दाद, जितनी तालियाँ लूटीं हैं शायद ही कोई और दूसरे शोअरा को मिलीं हों । वज़ह

उनकी शायरी में रसीली चुटकियों के ज़रिये बड़ी से बड़ी बात नुमायाँ होती है, जो आम शायर तसव्वुरर भी नहीं कर सकता है। ऊपर से उनकी पुरकशिश जादुई **आवाज़** व पेश करने का अंदाज। **ख़ुमार** साहब की एक चुटकी देखें–

ख़ुमार अय बलानोश तू और तौबा,
तुझे ज़ाहिदों की नज़र लग गई है ।

उनके मज़्मुए **'रक़्शे मय'** से आप ख़ुद ही अंदाज़ा लगा सकते हैं कि इस मज़्मुए में उन्होंने किस शै की ज़ानिबदारी की होगी। उसी मज़्मुए के कुछ अश्‌आर नोश फ़र्मायें–

हम तौबा करके मर गए बेमौत अय ख़ुमार,
तौहीने मैकशी का मज़ा हम से पूछिए ।
()()()

बाद ए तौबा के ये आलम रहा मुद्दतों,
हाथ बेज़ाम ही लब तलक जाते रहे ।

मज़्मुए की एक और ग़ज़ल, जो शुरू होती है कुछ इस तरह कि–

'अकेले हैं वो और झुँझला रहे है,
मेरी याद से जंग फ़र्मा रहे हैं ।
इलाही मेरे दोस्त हों ख़ैरियत से,
ये क्यों घर में पत्थर, नहीं आ रहे हैं ?'...

के, दो अश्‌आर जिनसे इस ग़ज़ल का इख़्दाम होता है, ही काफ़ी हैं, मय की शान को बयान करने के लिए–

क़यामत के आने में रिंदों को शक़ था,
जो देखा तो वाइज़ चले आ रहे हैं ।
बहारों में भी मय से परहेज़, तौबा,
ख़ुमार आप काफ़िर हुये जा रहे हैं ।

एक सलाह भी दी है **खुमार** साहब ने, और वो ये कि–

मिल आओ खुमार एक दिन मैकशों से,
तुम्हें याद करते हैं साथी पुराने ।

यहाँ **खुमार** साहब को पढ़ने और उनके मोहज़्ज़ब तरन्नुम मे उन्हें सुनने में ज़मीन आसमान का फ़र्क़ है, सुनिएगा मज़ा आएगा जब वे बतरन्नुम फ़र्माते हैं–

तर्के–मय को अभी दिन ही कितने हुये,
कुछ कहा मय को ज़ाहिद तो अच्छा नहीं ।
तूने तौबा तो कर ली, मगर ए खुमार,
तुझको रहमत पे, शायद भरोसा नहीं ।

मुबारकाँ जनाब **नामालूम** साहब, आपके कलाम से ऐसा तो बिल्कुल नहीं लगता कि आप नामालूम हैं । भई क्या ही उम्दा तरीक़े से, शैख़ और मुसल्मान का फ़र्क़ समझाया है, वाह वाह वाह –

चाप सुनकर जो हटा दी थी, उठा ला साक़ी,
शैख़ साहब हैं, मैं समझा था मुसल्मान है कोई ।

कुछ लोग ऐसे होते हैं कि **'मन–मन भाए, मूँड़ हिलाए',** हमारे शैख़ साहब का हाल भी कुछ ऐसा ही है । शैख साहब के इस हाल पर जनाब **'ज़रिया'** साहब का नज़रिया पेशेख़िदमत है–

शैख़ ये कहता गया, पीता गया,
है बहुत ही बदमज़ा, अच्छी नहीं है ।

अल्लाह के नेक बंदे जनाब **जिगर मुरादाबादी** साहब तो मय से तौबा भी कर चुके थे, पर क्या करें, 'ज्यों ज्यों दवा की, दर्द बढ़ता गया ।' नासेह की नसीहत का उल्टा ही असर उन पर हुआ–

तौबा तो कर चुका था, मगर इसका क्या इलाज़,
वाइज़ की ज़िद ने फिर मुझे मज़बूर कर दिया ।

फ़ल्सफ़ा ये है कि अपने वज़ूद को क़ायम रखने के लिए दो ही सूरतें हैं, या तो अपने आप को दुनिया के हिसाब से बदल डालो या फिर दुनिया को अपने तौर से बदल डालो। दूसरी सूरत तक़रीबन नामुमकिन ही है, लेकिन वाज़िद हुज़ूर कि मुश्किल यूँ भी है और यूँ भी । जनाब **असद मुलतानी** साहब ने वाइज़ की मज़बूरी को क्या बख़ूबी बयान किया है–

रहें न रिंद ये वाइज़ के वश की बात नहीं,
तमाम शहर है दो-चार-दस की बात नहीं ।

जनाब **फ़िराक़ गोरखपुरी** साहब की शैख़ साहब से, लगता है कुछ ज़ियादा ही पटती है। फ़ज़ीहत न हो इसके लिए वे शैख़ साहब को बात रफ़ा-दफ़ा करने की सलाह कुछ इस क़दर देते हैं–

मैकशो ने आज तो, सब रंगरलियाँ देख लीं,
शैख़ कुछ इन मुँहफटों को, दे दिला कर चुप करो ।

पीर-ए-शायरी ग़ालिब का क़ौल था कि **'सोहबत का असर होता है।'** मरहूम बादशाह जनाब बहादुरशाह जफ़र, ज़ाहिद को 'यथा देश तथा वेश' का मशवरा दे कर जन्नतनशीं हुये–

अगर बैठे रिंदों की सोहबत में ज़ाहिद,
तो छोड़ दे सब पारसाई का धंधा ।

जनाब **शाहिद अलीपुरी** अपना तआर्रुफ़ कुछ इस तरह बयाँ करते हैं–

तुझे ए शैख़ ख़ब्ते-तर्के मय है,
मैं तर्के-तौबा का हामी रहा हूँ ।

साग़र बलरामपुरी साहब वाइज़ को टोकते हैं–

तौबा-तौबा मैकदे में ऐसी बातें गुनाह हैं,
वाइज़ों आए हो तुम, साग़र को समझाने कहाँ?

जनाब **अमीर मीनाई** साहब भी नासेहों को ताना देने से नहीं चूकते हैं–

मस्ज़िद में बुलाते हैं, हमें ज़ाहिदों–नासेह,
होता कुछ अगर होश, तो मैख़ाने न जाते ?

वाइज़ का मान रखने के लिए वे क़ुबूल करते हैं, कि पतझड़ के मौसम तक के लिए तौबा तो समझ में आती है, लेकिन जब बहार का मौसम हो तो कोई क्यों कर अपनी तौबा पर क़ाइम रह सकेगा?

वाइज़ का था लिहाज़ सो, फ़स्ले–खिज़ाँ तलक,
लो आ गई बहार, मैं तौबा शिकन हुआ ।

जनाब **'ज़ौक़' रामपुरी,** रामपुरी चाकू से भी धारदार कटाक्ष करते हुये शेख़ साहब को चिढ़ाते हैं–

मैं मैकदे से लौट तो आया जनाबे शेख़,
मस्ज़िद का रास्ता तो, बता दीजिये मुझे ।

जब चुल्लू भर पानी में ईमान बह ही गया तो क़सर क्यों छोड़ी जाए, कम से कम जनाब **'नज़्म' लवातबाई** तो यही मानते हैं–

अल्लाह रे साक़ी का, वो ज़ाहिद को पिलाना,
कहता हूँ मैं बस–बस, तो वो कहता है, नहीं, और ।

रिंदों के पक्षधर जनाब फ़ैज़ रतलामी साहब फ़र्माते हैं–

बदगुमा हम तेरी बातों से हुये हैं ज़ाहिद,
बद्दुआ भी तेरी रिंदों को दुआ लगती है ।

जनाब **अब्दुल हमीद 'अदम'** साहब का ताल्लुक़ ज़रूर नव्वाब ख़ानदान से रहा होगा वरना वो वाइज़ को इस तरह फ़रमान न सुनाते–

कुछ शराफ़त से काम ले वाइज़,
वाज़ को छोड़, भाग कर मय ला ।

'कहीं पर निगाहें कहीं पर निशाना' ऐसे लोगों की कमी नहीं है। अब शैख़ साहब भी कुछ इसी तरह से निशाना साधें तो इसमें आश्चर्य कैसा ? साग़र चीज़ ही ऐसी है। पर जनाब **इक़बाल सैफ़** साहब की आदत बड़ी खराब है, टोक देते हैं–

लब पर ख़ुदा, साग़र पर नज़र है,
शैख़, तुम्हारा ध्यान किधर है?

ख़वातीनों को सिखाया जाता है कि ख़ावन्द के दिल में जगह बनाने के लिए, उसके पेट के ज़रिये जाया जा सकता है । इसी तरह मौलवियों का गुस्सा खत्म, बस जरा सी पिला सको तो । यह मानना है जनाब **ज़लील मानिकपुरी** साहब का–

कुफ़्रे ज़ाहिद तोड़ना क्या बात है,
सिर्फ़ इक मय ही पिलाई जाएगी ।

बुज़ुर्ग कहा करते थे, मरते वक़्त इंसान झूठ नहीं बोलता है, पर जनाब **'मस्तान' बीकानेरी** साहब का मानना है शराब पी कर भी इंसान झूठ बोलने की ज़ुर्अत ही नहीं कर पाता–

जो देखा हज़रते–मस्तान को, तो रिंद ये बोले,
हमारे पीर आए हैं, हमारे पीर आए हैं ।

मय से मुतल्लिक कुछ और खुलासे करता चलूँ –

मैख़ाने से, शराब से, साक़ी से जाम से,
अपनी तो ज़िंदगी शुरू होती है शाम से ।
आ मेरा हाथ थाम बहुत हो गया नशा,
यारों ने मय पिलादी बहुत तेरे नाम से ।
रखते पाक दिल को, नियत और निगाह को,
पीते हैं हम शराब बड़े एहतराम से ।
मैकश की हर ख़ुशी तो होती है शराब से,
मिलती है उसे ज़िंदगी हरेक जाम से ।

()()()

ये ग़मे ज़िंदगी कुछ तो दे मशवरा,
एक तरफ़ उनका घर एक तरफ़ मैकदा ।
मैं कहाँ जाऊँ होता नहीं फ़ैसला,
एक तरफ़ उनका घर एक तरफ़ मैकदा ।
इक तरफ़ राहवर कोई गुल्फ़ाम है,
इक तरफ़ महफ़िल-ए-बादा-ओ-जाम है ।
मेरा दोनों से है कुछ न कुछ वास्ता,
ज़िन्दगी एक है और तलबगार दो ।
जाँ अकेली मगर जाँ के हक़दार दो,
तू बता पहले किसका करूँ हक़ अदा ?
इश्क़ का लुत्फ़ मैं कैसे छोड़ूँ 'ज़फ़र',
मेरा दोनों से रिश्ता है नज़दीक का ।
()()()

शराब चीज़ ही ऐसी है न छोड़ी जाये,
ये मेरे यार के जैसी है न छोड़ी जाये ।
हरेक शय को जहाँ में बदलते देखा है,
मगर ये वैसे की वैसी है न छोड़ी जाए ।
इसी के दम से पिघलती हैं बोझल रातें,
मगर ये पानी के जैसी है न छोड़ी जाये ।
यही तो टूटे दिलों का इलाज है 'अंजुम',
मैं क्या कहूँ कैसी है न छोड़ी जाए ।
()()()

मँहगी हुई शराब, के, थोड़ी थोड़ी पिया करो,
पीओ लेकिन रक्खो हिसाब के, थोड़ी थोड़ी पिया करो ।
ग़म का दौर हो या ख़ुशी, समां बांधती है शराब,
एक मशवरा है जनाब के, थोड़ी थोड़ी पिया करो ।
दिल के जख़्मों को सीना क्या, पीने के लिए जीना क्या,

फूँक डाले जिगर को शराब के, थोड़ी थोड़ी पिया करो ।
दिलवर की बातों में नशा, ज़ुल्फ़ों में नशा, आँखों में नशा,
सबसे बढ़के उनका शबाब के, थोड़ी थोड़ी पिया करो ।

यहाँ मरहूम **राज कपूरजी** की 'मैं नशे मैं हूँ' फ़िल्म का वो गीत भी मौज़ूँ दीख पड़ता है जिसके बोल कुछ इस तरह से हैं-
मुझको यारो माफ़ करना, मैं नशे में हूँ,
अब तो मुमकिन है बहकना, मैं नशे में हूँ,
कल की यादें मिट रही हैं, दर्द भी है कम,
अब ज़रा आराम से आ जा रहा है दम,
कम है अब दिल का तड़फ़ना, मैं नशे में हूँ ।

गोपाल मित्तल साहब! लगता है इस लाइन में नए-नए हैं, उन्हें मुगालता है कि वाइज़ को मैख़ाने में वो लाये हैं-
दाद दे मुझको ये वाइज़, तुझको बातों बातों में,
जिस जगह पर ले आया, कूए-मय-फ़रोशाँ हैं ।

जनाब **अहसान मारहरवी** साहब का हौसला तो देखो, शैख़ से ही मज़ाक़ । ऐसी बातें कोई बताता होगा भला ?-
ले पी चुका शराब, सुरूर आ गया तुझे,
हाँ शैख़ ! हाल हूर का, अब सुना मुझे ।

जनाब **रंजन गोरख़पुरी** साहब की साफ़गोई देखें-
तल्ख़ हो जाम तो शीरीन बना लेता हूं,
ग़मों के दौर में चेहरे को सज़ा लेता हूं ।
हर एक शाम किसी झूमते मैख़ाने में,
मैं खुद को ज़िन्दगी से छिपा लेता हूँ ।
कहीं फ़रेब न हो जाए उनकी आँख़ों से,
मैं अपने जाम में दो घूँट बचा लेता हूँ ।
मोहतरम जनाब **जिगर बरेलवी** साहब मैख़ाने में उन पर हुई

बसारतों (नज़रों) का जिक्र कुछ इस तरह कर गए कि कोई भी मैख़ाने जाने के लिए मचल उठे–

न ख़ुम–ओ–सुबू हुये चूर अभी, न हिज़ाब–ए–पीर–ए–मुगाँ उठा,
अभी मस्त बादा परस्त है, अभी लुत्फ़–ए–बादा कहाँ उठा ।
किसी मैकदे में रहा ज़िगर, के था महव–ए–ख़्वाब में रात भर,
हुई क्या बसारतें सुबह–ए–दम, के उठा तो ज़मज़माख़्वाँ उठा ।
महव–ए–ख़्वाब = ख़्वाब में तल्लीन, ज़मज़मा = गुनगुनाते हुये

एक मुख़्तलिफ़ अंदाज़ की शायरी के लिए जाने जाने वाले मोहतरम शायर जनाब **बशीर बद्र** साहब का मानना है–

और जाम टूटेंगे, इस शराबख़ाने में
मौसमों के आने में, मौसमों के जाने में ।

'अति सर्वत्र वर्जयेत' किसी भी चीज़ की अधिकता हमेशा तकलीफ़दे होती है, फिर चाहे वह खाना ही क्यों न हो । मोहतरम **हसन बरेलवी** साहब तो नसीहत की अति को भी ग़ैरवाज़िब समझते हैं–

आपकी ज़िद ने मुझे और पिलाई हज़रत,
शैख़जी इतनी नसीहत भी बुरी होती है ।

अति के बारे में जो **बरेलवी** साहब ने कहा है, जनाब **शकील बदायूँनी** साहब भी उसकी ताईद करते हुये फ़र्माते हैं–

तर्के–मय ही इसे समझ नासेह,
इतनी पी है, के पी नहीं जाती ।

असीर लखनवी काबे जाते–जाते भी मैकदे पर नज़र रखते हैं–

काबे चलता हूँ पर इतना तो बता,
मैकदा कोई है ज़ाहिद राह में ?

असीर साहब की तरह ही जनाब **अहसान दानिश** साहब भी जान लेना चाहते हैं–

मैख़ाना खुले या न खुले, सिर्फ़ ये देखो
शीशों के ख़नकने की सदा है कि नहीं ?

और तो और जनाब **सरवर** साहब भी मैख़ाने में ही ज़िंदगी का मज़ा तसव्वुरर करते हैं–

हमें यह मैकदा–ए–आशिक़ी ही काफ़ी है,
हम और कोई दर–ए–कारसाज़ क्या जाएँ ?

जनाब **नरेशकुमार शाद** साहब के लिए मैख़ाना कोई आम जगह नहीं है बल्कि एक ख़ास मुक़ाम रखता है, उनका मानना है कि यह कोई ऐसी वैसी जगह नहीं कि कोई भी आ–जा सकता हो । और वे इसके हक़ में बिल्कुल भी नहीं है कि यहाँ आने वाले के लिए किसी ख़ास वक़्त की ज़रूरत होती है, आप फ़र्माते हैं–

ये इंतज़ार ग़लत है, के शाम हो जाए,
जो हो सके तो अभी, दौर–ए–जाम हो जाए ।
ख़ुदा–न–ख़्वास्ता, पीने लगे जो वाइज़ भी,
हमारे वास्ते पीना, हराम हो जाए ।
मुझ जैसे रिंद को भी तूने हश्र में या रब,
बुला लिया है तो, कुछ इंतिज़ाम हो जाए ।
वो शान–ए–बाग में आए हैं, मैकशी के लिए,
ख़ुदा करे हरेक फूल, जाम हो जाए ।
मुझे पसंद नहीं इस पे ग़मज़ाँ होना,
वो रहगुज़र जो, गुज़रगाह–ए–आम हो जाए ।
ग़मज़ाँ = आना–जाना

तो लाज़िमी है कि इतने ख़ास मुक़ाम वाली जगह के कुछ उसूल, कुछ दस्तूर भी होते होंगे ? यह भी **शाद** साहब से ही जानिए, पर ये जनाब **नरेशकुमार शाद** साहब नहीं, जनाब **शाद अज़ीमाबादी** साहब हैं–

ये बज़्मे–मय है, यहाँ कोताहदस्ती में है महरूमी,
जो बढ़ कर ख़ुद उठा ले हाथ में, मीना उसी का है ।

जनाब **अब्दुल हमीद 'अदम'** साहब दस्तूर–ए–मयकदा समझाते हुये फ़र्माते हैं–

लाज़िम है मयकदे की शरीयत का एहतमाम,
ऐ दौर–ए–रोज़गार, ज़रा लड़खड़ा के चल ।

और ये भी कि–

ये मयकदा है, यहाँ का निज़ाम उल्टा है,
जो लड़खड़ा न सके, पी के हो गया बदनाम ।
शराब इतनी शरीफ़ाना चीज़ है 'अदम',
के पी के आदमी सच बोलता है सुबह–शाम ।

एक और दस्तूर यह भी, जो जनाब नामालूम साहब को मालूम था और वे आप–हमें भी बता गए हैं–

मैख़ाने में लुत्फ़–ए–ज़ीस्त पीने वाले,
मीना–ओ–सुबू से दिल लगाने वाले,
पी ली है तो मैख़ाना खाली कर दे,
काफ़ी हैं अभी बहुत से आने वाले ।

और ये भी कि

ख़ुद्दार इतनी फ़ितरत–ए–रिंदाना चाहिए,
साक़ी ख़ुद कहे तुझे पैमाना चाहिए ।

और ये भी कि–

उस शख़्स पर शराब का पीना हराम है,
जो रह के मैकदे में भी, इन्साँ न हो सका ।

और यह भी कि–

अब शिद्दत–ए–ग़म में मस्नूई आराम सहारा देता है,
या दोस्त तसल्ली देते हैं, या जाम सहारा देता है ।
ये दोस्त मोहब्बत के सदक़े तनहाई उठानी पड़ती है,
रहवर तो फ़क़त इस रस्ते में दो गाम सहारा देता है ।
दो नाम हैं सिर्फ इस दुनिया में, इक साक़ी का इक यज़्दाँ का,
इक नाम परेशां करता है, इक नाम सहारा देता है ।
तूफ़ान के तेवर तो देखो, साहिल की कोई उम्मीद नहीं,
मल्लाह की सूरत तो देखो, नाकाम सहारा देता है ।

मस्नूई= बनावटी, यज़्दाँ = ईश्वर को शिद्दत से मानने वाला, आस्तिक

और ये सूफ़ियाना अंदाज़ भी–

उठे कभी घबरा के तो मैख़ाने हो आए,
पी आए तो फिर बैठ रहे, यादे ख़ुदा में ।

एक और नामालूम शायर की नज़र में मैख़ाना वो पाक जगह है जहां आपको पाक–साफ होकर यानि कि पाकनीयत ही जाना चाहिए, वरना होगा ये कि –

जाम थर्राने लगे, उड़ गई बोतल से शराब,
बेवज़ू आ गया शायद कोई मैख़ाने में ।

इतनी बड़ी और वज़्नी बात डा० इक़बाल के अलावा कोई कह भी नहीं सकता था, सच्चा इंसान मैख़ाने के अलावा और कहीं कैसे मिल सकता है?

फ़रिश्तों की जरूरत क्या है, ये जन्नत नहीं वाइज़,
इसे मैख़ाना कहते हैं, यहाँ इंसान मिलते हैं ।

चक़बस्त साहब मज़ाक़ अच्छा कर लेते हैं –

कल रात मैकदे में अजब हादसा हुआ,
वाइज़ मेरे हिसाब में पी कर चला गया ।

क़ैसर हैदरी साहब शेख़ को धमकाते हैं–

शैख़ कुफ़्राने नेमती से डर,
रोज़ बादल उठा नहीं करते ।

होशियार शैख साहब !, जनाब **गुलाब रब्बानी** साहब, कहीं आपका पर्दाफ़ाश न कर दें–

जनाबे शैख़ समझते हैं ख़ूब रिंदों को,
जनाबे शैख़ को मगर हम भी समझते हैं ।

मैख़ाने के मालिक को मयग़ुसारों की औकात कितने वाज़िब तरीके से जनाब रियाज़ ख़ैराबादी साहब ने बता दी–

ख़बर मुझ रिंद की तुझको नहीं अय पीरे–मुग़ाँ
तौबा कर लूँ तो कभी मैकदा आबाद न हो ।

यथा नाम तथा काम, अपने नाम के मुताबिक़ ही जनाब **मस्तान बीकानेरी** साहब कितनी मस्त बात कह गए–

ख़बर ज़ाहिद की पूछी, मैकदे में रिंद यूं बोले,
अभी निकला है पी के, आजकल रोज़ाना आता है ।

नाम **नामालूम** पर पता नहीं उन्हें मैख़ाने के रस्मो–रिवाज़ कैसे मालूम हुये–

तुम्हारी बज़्म में, सब रिंद भी है, शैख़ भी हैं,
पीयें शराब भी, नेकी बदी की बात करें ।

और–

पाक–ओ–साफ़ इतनी है, जिसने पी, फ़रिश्ता हो गया
ज़ाहिदो यह हूर के, दामन से है छनी ।

और–

हाँ ख़ुद पीता हूँ मैं, पिलाता भी हूँ,
ग़िला जो करते हैं, उनको बताता भी हूँ ।

किसी का डूबना, देखा नहीं जाता मुझसे,
सूरज डूबने से पहले, ख़ुद डूब जाता भी हूँ ।

और–
आदतन पी लेता हूँ, इरादतन पी लेता हूँ,
रूठें गर ख़ुशियाँ, ज़ियादतन पी लेता हूँ ।
नफ़रत जो करे कोई मुझसे, नफ़रतन पी लेता हूँ,
मैख़ाने में जब आ ही गया, ज़हर मिले पी लेता हूँ ।

मैं भी कुछ कहूँ–
बालानोशी नशा लाती है, नादान कहते हैं,
ये तो, होश में लाती है, रिंदान कहते हैं ।

यह मैंने तब कहा जब जनाब कालीचरन सैयाद की साफ़गोई से दो–चार हुआ–
सब कुछ समझ रहे हैं वाइज़, मगर क्या करें?
हमें होश ही न आए अब मैकशी से पहले ।

जनाब **'हफ़ीज़'** साहब और जनाब **'मानसिंह ख़्याल'** साहब शैख़ साहब को क्या समझाने की कोशिश कर रहे है, चलिये पता करते हैं–
शैख़जी मैकदा है, काबा नहीं,
याँ तो होंगी ही ख़ुमार की बातें ।

()()()

जबकि नफ़रत है तुम्हें पीने–पिलाने से 'ख़्याल',
शैख़जी आप ख़राबात में आते क्यों हो?
कहते हैं कि ग़ालिब का है अंदाज़े बयाँ और। आप ही देख लीजिये कितनी बड़ी बात, कितने आसान लफ़्ज़ में बयाँ कर गए

पीरे–शायरी–

वाइज़ न तुम पियो न किसी को पिला सको,
क्या बात है तुम्हारी, शराबे तुहूर की ?
शराबे–तुहूर = जन्नत में पी जाने वाली शराब

अकबर इलाहाबादी साहब की होशियारी भरी साफ़गोई तो देखें–
शैख़ की दावत में मय का काम क्या ?
एहतियातन कुछ मँगा ली जाएगी ।

दाग़ साहब के मिसरे का भी जवाब नहीं –
लुत्फ़े मय तुझसे क्या कहूँ ज़ाहिद ?
हाय कमबख़्त तूने पी ही नहीं ।

श्रीमान **हीरलाल 'फ़लक'** की जनाबे शैख़ को लगाई गई लताड़ भी तो सुनते जाइए–
शैख़ साहब, और क्या दुनिया में कुछ बाक़ी नहीं ?
जब सुना है ज़िक्रे–मय, जब देखो पैमाने की बात ।

बात श्रीमान **सतनाम ख़ुमार** साहब ने ही कही, पर यक़ीन मानिए ख़ुमारी में नहीं क्योंकि बात बड़े पते की है–
हमने पहले ही कहा था, सू–ए–मैख़ाना चलो,
शैख़ फिर तुमको अगर, बहका गया तो क्या करें ?

आपको याद होगा जनाब **शक़ील साहब** ने जब ये कहा कि **'तर्के मय ही इसे समझ नासेह, इतनी पी है कि पी नहीं जाती'** तो उनकी मुराद आमफ़हम से थी, न कि शैख़ो–वाइज़ से, पर जब शैख़ और वाइज़ ही शौक़ फ़र्माने लगें तो जनाब **हीरा लाल 'फ़लक़'** साहब से बच कर कैसे जा सकते हैं–
पी गया प्यास में, जी भर गया तौबा कर ली,
शैख़ ये तो तेरी हस्रत हुई, ईमाँ न हुआ ?

जनाब **ज़लील मानिकपुरी** साहब जब कहते हैं कि **'बात साक़ी की न तोड़ी जाएगी, करके तौबा तोड़ डाली जाएगी'** तो जनाब **मुबारक़ अज़ीमाबादी** क्यों पीछे रहें? हाँ उनके बयान में कुछ नरमी ज़रूर है–

तू जो ज़ाहिद कहता है कि तौबा करले,
क्या कहूँगा जो कहेगा कोई कि पीना होगी ?

जनाब अनवर फ़रुक्खाबादी साहब भी तो यही पूछ रहे हैं–

सब को मालूम है मैं शराबी नहीं,
फिर भी कोई पिलाये तो मैं क्या करूँ
सिर्फ़ एक बार नज़रों से नज़रें मिलें,
और क़सम टूट जाए तो मैं क्या करूँ?
मुझको मैकश समझते हैं सब बादाकश,
क्योंकि उनकी तरह लड़खड़ाता हूँ मैं,
मेरी रग रग में नशा मोहब्बत का है,
जो समझ में न आए तो मैं क्या करूँ?
हाल सुनकर मेरा सहमे सहमे है वो,
कोई आया है ज़ुल्फ़ें बिखेरे हुये,
मौत और ज़िंदगी दोनों हैरान हैं,
दम निकलने न पाये तो मैं क्या करूँ?
कैसी लत कैसी चाहत कहाँ की ख़ता,
बेख़ुदी में है 'अनवर' ख़ुदी का नशा,
ज़िंदगी इक नशे के सिवा कुछ भी नहीं,
उनको पीना न आए तो मैं क्या करूँ ?

शैख़ों, ज़ाहिदों, वाइज़ों, नासेहों की पोल जनाब **परवेज़ शाहिदी** साहब से ही सुनते हैं–

ये सिर्फ़ बरहमन से निभाते हैं दुश्मनी,
रिंदों के साथ शैख़ का, याराना क्यों न हो ?

शकील साहब भी तो यही कह रहे हैं–

रिंदाने–जहाँ से ये नफ़रत, हज़रते वाइज़ क्या कहना?
अल्लाह के आगे बस न चला, बंदों से बग़ावत कर बैठे ?

'पहले पेट–पूजा, फिर काम दूजा' की तर्ज़ पर **क़ायम चाँदपुरी** साहब अपने साथी को समझाते हैं–

मज़लिसे–वाज़ तो ता–देर रहेगी 'क़ायम',
ये रहा मैख़ाना, अभी पी के चले आते हैं ।

जनाब **कुश्ता गयावी** साहब को शायद ग़लतफ़हमी हो गई है शायद इसलिए ही पूछ रहे हैं–

तुम कहाँ बैठ गए हज़रते–वाइज़ उट्ठो,
ये कोई मस्जिद नहीं, दरवाजा है मैख़ाने का ।

जनाब **इब्राहिम ज़ौक़** साहब का ज़ौक़ तो देखिये, उन्हें इतना भरोसा है कि वे कहते हैं–

आँख उसकी जब नशे में गुलाबी हो जाए,
सूफ़ी भी उसे देखे तो शराबी हो जाये ।

ताहिर होशियारपुरी साहब का कोसना सुनाऊँ–

निकलना पड़ा मैकदे से हमें,
ये कमबख़्त ज़ाहिद कहाँ मिल गया ?

मस्ज़िद भी उसी गारा–मिट्टी से बनाई जाती है जिससे मयख़ाना, अब वाइज़ धोखा खा जाए तो इसमें जनाब **अब्दुल लतीफ़ 'तपिश'** साहब का क्या दोष–

कहीं वाइज़ बहक आया न हो मस्ज़िद के धोखे में,
कोई खड़का रहा है, देखना ज़ंजीरे मयख़ाना ।

अब शैख़ साहब खुल्लमखुल्ला तो मैख़ाने जा नहीं सकते सो उन्होंने भी क्या ख़ूब बहाना ढूंढा था, पर वो **महबूब शांदा** साहब

से बच न सके–
बहाना शैख़जी ये खूब ढूंढ़ा,
कि हम रिंदों को समझाने चले हैं ।

नसीहत की भी तो कुछ हद होती है, कोई कब तक ज़ब्त करे? नहीं न? जनाब **मनमोहन लाल 'जब्त'** साहब भी ज़ब्त न कर सके–
मैकदे जाते हैं, इस वक़्त न छेड़ ये वाइज़,
आ के फिर वाज़ भी सुन लेंगे, अगर होश रहे ।

अल्लाह रे ! शैख़ साहब की समझ का क्या किया जाए जो ये समझते हैं कि इबादत करने से वे जन्नतनशीं होंगे और वहाँ उन्हें हूरों के हाथ से जाम पीने को मिलेंगे । बक़ौल क़तील शिफ़ाई साहब ऐसे लोग मय का मज़ा लिए बग़ैर ही इस दुनिया से उठ जाते हैं–
यक़ीं था शैख़ को, जन्नत में जाम ख़नकेंगे,
इसी खुशी में वो प्यासा ही मर गया होगा ।

भई, पता करना पड़ेगा जनाब **नामालूम** साहब क्यों अपनी शिनाख़्त से इतना डरते हैं और आपने आप को नामालूम कहलाना पसंद करते है, जबकि बात बड़े पते की कहते हैं–
मैख़ाने से मस्ज़िद तक पाये हैं नक़्शे–पा,
या शैख़ गए होंगे, या रिंद गया होगा ।

जनाब **आतिश** साहब की आतिशबाजी भी देखें–
फ़स्ले–बहार आई, पियो सूफ़ियो शराब,
बस हो चुकी नमाज़ मुसल्ला उठाइये ।

मीर 'दर्द' साहब को मलाल है कि वे शैख़ साहब की, ख़ाति. रदारी ठीक से न कर सके–
उठ चले शैख़ जी तुम, मज़लिसे–रिंदा से शिताब,
हमसे कुछ खूब मदारत न होने पाई ।

शिताब = जल्दी, मदारत = सेवा-टहल

जनाब **परवेज़ शाहिदी** साहब ने जब कहा कि 'ये सिर्फ़ बरहमन से निभाते हैं

दुश्मनी, तो जनाब **माइल देहलवी** ने **शाहिदी** साहब की बात को पुख़्ता तो किया पर कुछ कतरब्योंत के साथ-

लड़ते हैं जाके बाहर, ये शैख़-ओ-बरहमन,
पीते हैं मैकदे में साग़र बदल बदल कर ।

'मजाज़' लखनवी नाम है, मज़ाक़ उनका काम है, और चूंकि लखनऊ से हैं तो लाज़िमी है कि उनका मज़ाक़ भी नवाबी होगा -

भला सा नाम है उसका, उसे क्या कहते हैं ज़ाहिद ?
सुराही में जो ढलती है, जो पैमाने में होती है ?

अरे-अरे ये हज़रत कौन हैं जो वाइज़ को ही आँखें दिखाने की हिमाकत कर रहे हैं, अच्छा अच्छा अपने **अमीर मीनाई** साहब हैं-

कुछ आज मैंने नई पी है, हज़रते-वाइज़ ?
अज़ल का मस्त पुराना, शराबख़्वार हूँ मैं ।

अज़ल = अनादि काल

अब्दुल हमीद अदम साहब बड़े परेशान से दिख रहे हैं-

मैं छोड़ आया था मस्ज़िद में शैख़ को लेकिन,
वो मेरे पीछे-पीछे, मैकदे में आ निकला ।

जनाब हफ़ीज़ जौनपुरी साहब की साफ़गोई-

मेरी शराब की तौबा पै न जा अय वाइज़,
नशे की बात नहीं एतबार के क़ाबिल ।

श्रीमान **नरेश कुमार 'शाद'** साहब की चिंता भी वाज़िब है-

ख़ुदा न ख़्वासता पीने लगें जो वाइज़ भी,
हमारे वास्ते पीना हराम हो जाए ।

शाद साहब के इस शेर से मुझे अपना वो शेर याद आ गया, जब मैंने कहा था कि–

पीने लगे जो वाइज़ भी, मए–मस्त मयक़दे में
नार–ये दोज़ख़ का क्योंकर, किसी को भी डर हो?

जनाब **सतनामसिंह 'ख़ुमार'** साहब की सोच भी जनाब **अब्दुल हमीद अदम** साहब से मिलती–जुलती है, जिन्होंने कहा था– 'मैं छोड़ आया था मस्ज़िद में शैख़ को लेकिन'–

कहीं फिर भूल से ये मैकदे वापिस न आ जायें,
जनाबे– शैख़ को काबे तलक पहुँचाने जाना है ।

शायद नहीं, पुख़्ता तौर पर **अमीर मीनाई** साहब यह ज़ाहिर करना चाहते हैं कि *'मस्ज़िद के सरपरस्त, अनाड़ी हों साबित मैकदे में, हम जैसे सिरफ़िरे मस्ज़िद सम्हाल लें ।'*

जो मैकशी से हो फ़ुर्सत, तो दो घड़ी को चलो,
'अमीर' मस्ज़िदे–जामा में इमाम नहीं ।

जनाब **अहसान मारहरवी** साहब ! अच्छा नहीं, इस तरह रुसवा करना ज़ाहिद को–

हम रिंद तो फिर रिंद हैं, ज़ाहिद को क्या हुआ ?
हूरों का तलबगार है, मालूम नहीं क्यों ?

अनवर तावाँ साहब का मशवरा–

आ गया था जो ख़राबात में, पी लेनी थी,
तुझको सोहबत का भी न, ज़ाहिद क़रीना आया ।

अब आप जो सुनेंगे वह किसी नौसिख़िये ने नहीं बल्कि, जनाब शैख़ नासिख़ साहब ने फ़र्माया है–

वाइज़ मस्ज़िद से अब जाते हैं मैख़ाने को हम,
फेक कर जर्फ़-ए-वुज़ू, लेते हैं पैमाने को हम ।
जर्फ़-ए-वुज़ू= पवित्र होने के लिए इस्तेमाल बर्तन

जनाब **सतनामसिंह ख़ुमार** साहब की धमकी भी सुनते चलें-
मुझको पीने दे शैख़ रहने दे,
फिर से मेरी ज़ुबाँ न खुल जाए ।

मस्ज़िद की ख़ास बात, मैख़ाने के लिए तो आम बात है, अमीर मीनाई साहब तो शायद यही मानते हैं-
तेरी मस्ज़िद में वाइज़, ख़ास है औकात रहमत की,
हमारे मैकदे में दिन रात, रहमत बरसती है ।

वे यहीं नहीं रुके और फ़र्माया-
आज कुछ और भी पी लूँ, कि सुना है मैंने,
आते हैं हज़रते वाइज़, मेरे समझाने को ।

लखनऊ वालों की तो हर बात निराली होती है, जनाब अज़ीज़ लखनवी को ही ले लें-
कहीं वाइज़ है, कहीं पीरे-ख़राबात अज़ीज़,
उसको हर रंग में देखा है जहां देखा है ।

'अच्छा नहीं मज़ाक वाइज़ के आने का, आने पर देखेंगे, सम्हाल लेंगे ।' मेरे इस बयान की ताईद जनाब **मस्तान बीकानेरी** साहब ने भी की है-
उसकी मस्ज़िद भी तो आख़िर मैकदे के पास है,
शैख़ मैख़ाने में आएगा, तो देखा जाएगा ।

फ़क़ीरे-आज़म कबीर की तर्ज़ पर सारे आलम को लताड़ लगाई है जनाब **आलम फ़तहपुरी** साहब ने-

शराब पीने से आलम को रोकने वालो,
लहू का पीना तो, पहले हराम करो ।

दोगली सोच वालों की छीछालेदर चचा **ग़ालिब** पहले ही कर गए हैं–

रात पी ज़म–ज़म पै मय, और सुबह–दम,
धोये धब्बे ज़ाम–ए–अह्राम के ।
ज़ाम–ए–अह्राम = हज़ के समय बांधी जाने वाली चादर

जनाब **फ़ैज़ अहमद फ़ैज़** साहब ने क्या दुरुस्त बात कही है–
काफ़िर के दिल से आया हूँ मैं देख कर,
ख़ुदा मौज़ूद है वहाँ, उसे पता ही नहीं ।

'ये लो अपनी राम–राम, हम तो जाते अपने गाम ।' 'आप थे, मैं था, ख़ुमार था, सब ठीक था, अब मुझे जाना पड़ेगा, ख़ुमार बस उतरने को है ।' जनाब **सतनामसिंह ख़ुमार** साहब के मैख़ाने जाने का वक़्त हो चला–

सुबह फिर गुफ़्तगू होगी, मेरे ज़ाहिद ख़ुदा–हाफ़िज़,
तुझे मस्ज़िद में जाना है, हमें मैख़ाने जाना है ।

'वो आए हमारे घर ख़ुदा की क़ुदरत है, कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं।' जनाब **ख़ैराबादी** तो मानों ज़ाँ निसार करने लगे–

अहले–हरम भी आके हुये थे शरीक़े–दौर,
कुछ और रंग आज मेरी मैकशी का था ।

चचा कहा करते थे 'कहते हैं कि सोहबत का असर होता है, कहाँ होता है, कौन से शहर में होता है।' होता है जनाब बिल्कुल होता है आप ख़ुद ही मोहतरम शायर जनाब **दाग़ देहलवी** साहब से सुन लीजिए–

रिंदाने बेरिया की है, सोहबत किसे नसीब,
ज़ाहिद भी हम में बैठ के, इंसान हो गया ।
बेरिया = निश्छल, सीधा सादा

'चित भी मेरी, पट भी मेरी' कुछ इसी तरह की फ़ितरत पाले रहते हैं ये शैख़ो-बरहमन । जनाब **साइल देहलवी** साहब फ़र्माते हैं-
ये मस्ज़िद है, ये मैख़ाना, तअज्जुब इस पै आता है,
जनाबे शैख़ का नक़्शे-क़दम यूँ भी है और यूँ भी ।

और जब शैख़ साहब ने जनाब **शाहिद कबीर** साहब को उनके मैख़ाने जाने के लिए हिकारत भरी नज़रों से देखा तो **शाहिद कबीर** साहब भी कहाँ चुप रहने वालों में से थे-
मैख़ाने की बात न कर वाइज़ मुझसे,
आना-जाना तेरा भी है, मेरा भी ।

कुश्ता गयावी साहब वाइज़ को याद दिलाते हैं-
'ये तो मस्ज़िद नहीं, दरवाजा है मैख़ाने का',
जनाब **साग़र नियाज़ी** साहब भी उन्हें समझा चुके हैं-
'यह मैकदा है तेरा मदरसा नहीं वाइज़',

हफ़ीज़ साहब ने भी कोशिश कर ली-
'शैख़जी मैकदा है काबा नहीं ।'

देखें **दाग़ देहलवी** साहब इस मक़सद में कामयाब हो पाते हैं या नहीं-
देखना पीरे-मुगां, हज़रते वाइज़ तो नहीं,
कोई बैठा नज़र आता है पसे-ख़ुम मुझको ।

उस दिन कोई कह रहा था कि चचा **ग़ालिब** ने भी कुछ ऐसा ही कहा था कि वाइज़ को मैख़ाने में नमूदार होते उन्होंने भी देखा

था–

कहाँ मैख़ाने का दरवाजा ग़ालिब, और कहाँ वाइज़ ?
पर इतना जानते हैं, कल वो जाता था कि हम निकले ।

किसी ने वाइज़ की नसीहतों से बाज़, करारा जवाब दे डाला–

'कभी वैसे ही, कभी तोल के पी है मैंने,
मुख़्तसर ये है कि, जी खोल के पी है मैंने ।
नार–ए–दोज़ख़ से मुझको डराता क्या है ज़ाहिद,
आग भी यूँ ही पानी में घोल के पी है मैंने ।'

जनाब **जोश मलीहाबादी** भी इसी तर्ज़ पर ज़ाहिद को आँख दिखा रहे हैं–

तू आतिशे–दोज़ख़ से डराता है उन्हें,
जो आग को भी पी जाते हैं पानी करके ।

समन सरहदी साहब आपका सवाल बिल्कुल मौज़ूँ है–

मैकदे के नाम से ना–आशना था शैख़ जब,
किस तरह वह वाकि़फे़–आदाबे–मैख़ाना हुआ?

वाह! शैख़ साहब की पीने के बाद की हालत का क्या ख़ाक़ा खींचा है जनाब **महेंद्र सिंह बेदी 'सहर'** साहब ने –

नश्शा–ये–मय तेज़तर होता गया,
शैख़ साहब वाज़ फ़र्माते रहे ।

जनाब **नामालूम** न जाने ज़ाहिद के पीछे क्यों पड़े हैं–

ये मस्ती भरे हैं पैमाने, पीने का मज़ा तू क्या जाने,
अब छोड़ नसीहत ये ज़ाहिद, मैख़ाने हैं ये मैख़ाने ।

और

शैख़जी, थोड़ी सी पी कर आइये,
मय क्या शय है, फिर हमें बताइये ।

और
पीते हैं एक जाम से, ज़ाहिद भी रिंद भी,
मंज़र–ए–मैकदा भी, कितना अज़ीब है ?

जनाब **साजन पेशावरी** साहब का पेशेवराना अंदाज़ भी देखें–
आप भी हैं, मैं भी हूँ, और जाम भी,
शेख़जी रंगीन कर लें, शाम भी ।

आपका एक और तंज़ नोश फ़र्मायें–
मयकदे में नमाज़ का चर्चा,
कोई ज़ाहिद सुधर गया होगा ।

कृष्ण गोपाल शफ़क़ साहब आप बजा फ़र्माते हैं कि शैख़ो–बरहमन कभी भी कोई ऐसी बात नहीं करते जो मैख़्वारों को गवारा हो, तो मैख़्वारों को भी क्या पड़ी है जो उनकी बात पर कान दें–
किसी भी बात का उनकी शफ़क़ ख़्याल न कर,
जनाबे–शैख़ ने क्या बात की ठिकाने की ?

शफ़क़ साहब की बात पर एक अलग तंज़िया तरीक़े से जनाब **हरिकृष्ण सहाय 'बर्क़'** साहब ने भी अपनी मुहर लगाई–
ये छुप के जाना रोज़ मयकदे में हज़रते ज़ाहिद,
हमें मालूम है वल्लाह, जैसे पारसा तुम हो ।

ज़रुरी नहीं कि आपको ज़ाहिद, वाज़िद या नासेहा ही नसीहत दें, कोई अदना भी तसल्लीबख़्श नसीहत आपको दे सकता है, अब ये आप पर है उसे मानें या न मानें, फिर अगर आपको नसीहत मोहतरम **अब्दुल हमीद 'अदम'** साहब जैसे क़ाबिल नासेहा दें तो आप कैसे फ़रामोश हो पाएंगे–

शैख़ इनके करीब मत आना,
ये किताबें नहीं हैं, पियाले हैं ।

मुबारिक् हो जनाब **मुबारक् अजीमाबादी** साहब, बस कुछ दिन और मैख़ाने की सैर कीजिये, ख़ुद ब ख़ुद जान जाएँगे कि–

ख़बर इतनी तो है शीशे से पैमाने में आती है,
ख़ुदा जाने, कहाँ से खिच के मैख़ाने में आती है ?

जिगर मुरादाबादी साहब को वाइज़ की नादानी पर तरस आता है, अच्छा किया जो हज़रत को उनकी औक़ात बता दी–

मुझे उठाने को आया है वाइज़े–नादां,
जो उठ सके तो मेरा साग़रे–शराब उठा ।

यह क्या! जनाब **साहिर** साहब ने, अरे वही अपने लुधियाने वाले साहिर साहब ने तो शैख़ साहब की सारी पोलपट्टी ही खोलकर रख दी–

हज़रते शैख़ यूं तो नहीं ताइब, बादा–ए–चश्म–ए–हूर पीते हैं,
और अपनी ख़ता नहीं कोई, बस यही है कुसूर, पीते हैं ।

ताइब = तौबा करने वाला

शायरी की हसरत मोहतरम जनाब **हसरत जयपुरी** साहब तो बाक़ायदा शैख़ साहब को रोज़ मैख़ाने आने का न्यौता दे रहे हैं–

इस तरह हर ग़म भुलाया कीजिये,
रोज़ मैख़ाने में जाया कीजिये ।
छोड़ भी दीज़े तक़ल्लुफ़ शैख़जी,
जब भी आयें, पी के जाया कीजिये ।
ज़िन्दगी भर फिर न उतरेगा नशा,
इन शराबों में नहाया कीजिये ।

जनाब **अब्दुल हमीद अदम** साहब, शराब क्यों नहीं छूटती, के लिए तरह तरह के बहाने बनाते हैं, जब कि बात कुछ और ही है, जिसे वे आख़िर में मान भी लेते हैं–

तौबा तो कर चुका हूँ मगर फिर भी ऐ 'अदम',
थोड़ी शराब ला कि, तबीयत उदास है ।

()()()

तौबा को तोड़ने की नीयत न थी मगर,
मौसम का एहतराम न करते तो ज़ुल्म था ।

()()()

जब भी आता है जाम हाथों में,
सैकड़ों नाम याद आते हैं ।

पहले तो **नरेश कुमार शाद** साहब अपनी मयनोशी की वज़ह के लिए मासूम सा फ़लसफ़ा देते हैं, पर बात न बनते देख पलट वार कर देते है–

पीता हूँ इस गरज़ से कि जीना है चार दिन,
मरने के इंतज़ार ने पीना सिखा दिया ।

()()()

रात हम तो पिये हुये थे,
मगर आपकी आँख भी शराबी थी ।
फिर हमारे ख़राब होने में,
आप ही कहिए, क्या ख़राबी थी ।

सच मानें, और भी बहुत से अदीबों ने, बड़े ही फ़लसफ़ाना अंदाज़ में बड़ी गहरी बातें मय की आड़ लेकर कही हैं ।

कृष्ण अदीब साहब फ़र्माते हैं –

तल्ख़िए मय में, ज़रा तल्ख़िए दिल भी घोलें,
और कुछ देर यहाँ बैठ के पी लें, रो लें ।

वाह वाह, जनाब **ज़ौक़** साहब ने भी कितने पते की बात कही है–

अय 'ज़ौक़' देख दुख़्तर–ए–रज़ को न मुँह लगा,
छूटती नहीं है, मुँह से ये काफ़िर लगी हुई ।

जनाब **ज़लील मानिकपुरी** साहब की सुनें–

दुकाने मय पहुँच कर खुली हक़ीक़ते हाल
हयात बेच रहा था, वो मयफ़रोश न था ।

जनाब **क़मर ज़लालावादी** साहब के तंज़ से तो कोई भी बौख़ला जाएगा –

'क़मर,' तस्बीह पर हाथ, जा रहे हो सु–ए–मयख़ाना,
कोई देखे तो ये समझे, बड़े अल्लाह वाले हैं ।
तस्बीह = माला

मोहतरम **ज़ाँनिसार अख़्तर** साहब की नसीहत भी ग़ौर फ़र्माने लायक है –

अब सिवा इसके मदावा–ए–ग़मे दिल क्या है,
इतनी पी जाए कि हर रंज़–ओ–मेहन को भूलें ।

एक और **अख़्तर** साहब हैं, वैसे तो उनका नाम है **पी.टी. हरीचंद,** पर उनका तख़ल्लुस है 'अख़्तर', आप परवरदिगार–ए–आलम से शिकायत करते हुये फ़र्माते हैं–

बराये ऐश–ओ–मस्ती भी है, शगल–ए–मय, या रब
तेरी दुनिया में कुछ बदबख़्त, बहार–ए–ग़म भी पीते हैं ।

एक–दो **नामालूम** शायरों के अश्आर भी इस मुतल्लिक क़ाबिले ग़ौर हैं–

गरचे अहले शराब हैं हम लोग,
ये न समझ ख़राब हैं हम लोग ।

और–
मैं सर के बल गिरा था गुनाहों के बोझ से
दुनिया समझ रही थी कि सज़्दे में पड़ा है ।
सज़्दे में जब गया तो, लोगों ने ये कहा,
ज़ालिम ने इतनी पी है, कि मदहोश पड़ा है ।

वाह वाह! क्या बात है, मोहतरम **शाद अज़ीमाबादी** साहब, सुभानाल्लाहद्य आह इतनी बड़ी बात और इतने सपाट लहज़े में–
ख़राबात में मैकशो आ कर चुन लो,
नबी अपने–अपने, इमाम अपना–अपना ।

ख़ुमार बाराबंकबी साहब को लगता है ज्यादा हो गई है, तभी तो, कभी अपने डगमगाने के लिए बहाने करते हैं, तो कभी शैख़ साहब का ख़ैरमक़्दम करते हैं, पर मानते नहीं हैं और, और भी पीने की जिद करते हैं–
गुज़रे हैं मैक़दे से, जो तौबा के बाद हम,
कुछ दूर आदतन भी, क़दम डगमगा गए हैं ।

()()()

ये कौन आधी रात को, आया है मैकदे,
तौबा जनाबे शैख़ हैं, तशरीफ़ लाइये ।
()()()

जितनी भी मैकदे में है, साक़ी पिलादे आज,
हम तश्नाकाम, जोहद के सहरा से आए हैं ।
तश्नाकाम = प्यासे, जोहद = संयम, सहरा = रेगिस्तान

शकील बदायूँनी साहब क़ब्ल इसके कि असली मुद्दे पर आ जायें, सफ़ाई देते हैं कि मैख़ाना तो उन्हें बाई द वे मिल गया, पर असलियत पर आने में भी देर नहीं लगाते । वे वाइज़ को समझाते हैं–

राहे–ख़ुदा में आलमे–रिंदाना मिल गया,
मस्ज़िद को ढूंढते थे कि, मैख़ाना मिल गया ।
()()()

पी शौक़ से वाइज़, अरे क्या बात है डर की,
दोजख़ तेरे क़ब्जे में है, जन्नत तेरे घर की ।
()()()

न साक़ी, न मुतरिब, न साग़र, न मीना,
गवारा हो क्यों, बेहया बन के जीना ?
मुतरिब = वाद्ध-वृंद

ओज़ साहब भी मय की बलाएँ लेते हुये कह रहे हैं–
ख़ुद गिरे लेकिन छलकने न दी मय,
अपने सिर ले लीं बालाएँ जाम की ।

हाँ **जिगर** साहब साक़ी को बख़्शते हुये फ़र्माते हैं कि मेरे पीने का इल्ज़ाम साक़ी के सर न आए, पर यह भी ताक़ीद करते हैं कि–

साक़ी पर इल्ज़ाम न आए,
चाहे मुझ तक जाम न आए ।
मैख़ाने में सभी तो आए,
लेकिन 'जिगर' का नाम न आए ।

शैख़, वाइज़, ज़ाहिद, नासेह, वली, पारसाइयों पर कुछ करारे फ़िक़रे–

पारसाई धरी की धरी रह गई,

बंदगी भी यूंही राएगाँ हो गई ।
देख कर आँखरस काली काली घटा,
शैख़जी की तबीयत जवाँ हो गई ।
प्यार की आग में ख़त्म दोनों हुये,
ख़ाक परवाना, शम्मा धुवाँ हो गई ।
उनकी ज़िद, मेरा इशरार इतना बढ़ा,
फ़ैसला हो न पाया अज़ाँ हो गई ।
ये बताओ के तुम रात भर थे कहाँ,
देर इतनी हुई तो कहाँ हो गई?

राएगां = नष्ट, बर्बाद

()()()

वाइज़े मुहतरम इस तरह आपका, बादाख़ाने में आना बुरी बात है, आ गए हैं तो फिर थोड़ी पी लीजिये, बिन पिये लौट जाना बुरी बात है ।

तेरा कहना सर आँखों पै ये नासेहा,
उनका पीना-पिलाना बुरी बात है,
पर करें रिंद क्या, छाई हो जब घटा,
फिर न बोतल उठाना बुरी बात है ।
आएगा हश्र जब देखा जाएगा तब,
क्यों अभी से डरें शैख़जी बेसबब,
हैं बड़े क़ीमती उम्र के चार दिन,
इनको यूं ही गँवाना बुरी बात है।
घूँट दो घूँट पी कर मचल जाये जो,
बादानोशी की हद से निकल जाए जो,
ऐसे कमज़र्फ़ मैकश को अय मयकशो,
साथ अपने बिठाना बुरी बात है ।

()()()

हम बंदगी करें न करें, तेरे बंदों से प्यार करते हैं,
रिंद इतने गुनाह नहीं करते, जितने परहेज़गार करते हैं ।

()()()

बोतल खुली है रक़्स में, जामे शराब है,
अय मयकशो तुम्हारी दुआ क़ामयाब है ।
ऐसे हसीन वक़्त में पीना शबाब है,
हम तुम हैं, मयकदा है, शबे माहताब है ।
क्यों मयकदे में शैख़जी बनते हो पारसा,
नज़रें बता रही हैं कि नीयत ख़राब है ।
पैमाना भर के कहते हैं वो किस अदा के साथ,
पी लो हमारे हाथ से, पीना शबाब है ।

बरसात और मयनोशी का चोली–दामन का साथ है, क्योंकि मयनोश बरसात मे कुछ ज़ियादा ही मूड में आ जाते हैं, घटा छाई नहीं कि कोई कहने लगता है *'मान मौसम का कहा, छाई घटा जाम उठा'* तो कोई *'जहाँ बैठे घटा उट्ठी, जहाँ पहुँचे बहार आई'*, तो कोई *'जोशे मय और शब्जाजारों में है घटा छाई हुई'*, तो कोई *'चार ज़ानिब से घटा घिर के चली आती है'*, तो कोई *'छाई घटाएँ काली, ला दे शराब साक़ी'* तो कोई *'काली घटा है, मस्त फ़िज़ाँ है, जाम उठा कर झूम'*। घटाओं की तासीर को बयाँ करते हुये कुछ और क़सीदे–

बरसात की बहार है, साक़ी शराब ला,
ये रुत ही ख़ुशग़वार है, साक़ी शराब ला ।
बाहों में झूलते हैं हसीं इस अदा के साथ,
इक इक से हमकिनार हैं, साक़ी शराब ला ।
है साज़ भी छिड़ा हुआ, मैकश भी दुम्म है,
अब किसका इंतज़ार है, साक़ी शराब ला ।
गरमा रहीं हैं दिल को, उमंगें शबाब की,

हर मस्त बेक़रार है, साक़ी शराब ला ।
क्या भूरी भूरी छाई है, मैख़ाने पर घटा,
कैसी हसीं फुहार है, साक़ी शराब ला ।

()()()
घटा उलझी उलझी, ये मौसम सुहाना,
इलाही मेरी आज, तौबा बचाना ।
जो क़िस्मत से तुम मुझको अपना बना लो,
तो फिर मेरी ठोकर पै, सारा जमाना ।

अब अगर उस मशहूर क़व्वाली का ज़िक्र मैं न करूँ तो बड़ी नाइंसाफ़ी होगी साक़ी की शान में, जिसमें कहा गया है *'जब नज़र साक़ी की पड़ती है सँभल जाता है',* तो आइये आप भी झूमिए ये कहते हुये कि– 'न हरम में, न सुकूं मिलता है बुतख़ाने में, चैन मिलता है तो साक़ी तेरे मयख़ाने में'–

न हरम में न सुकूं मिलता है बुतख़ाने में,
चैन मिलता है तो साक़ी तेरे मयख़ाने में ।
झूम बराबर झूम शराबी, झूम बराबर झूम ।
काली घटा है, मस्त फ़ज़ा है,
जाम उठा कर झूम झूम झूम,
झूम बराबर झूम शराबी, झूम बराबर झूम ।
आज अंगूर की बेटी से मोहब्बत कर ले,
शैख़ साहब की नसीहत से बग़ावत कर ले,
इसकी बेटी ने उठा रक्खी है सर पर दुनिया,
ये तो अच्छा हुआ अंगूर का बेटा न हुआ,
कम से कम सूरते साक़ी का नज़ारा कर ले,
आ के मैख़ाने में जीने का सहारा कर ले,
आँख मिलते ही ज़वानी का मज़ा आयेगा,
कुछ तो अंगूर के पानी का मज़ा आएगा।
हर नज़र अपनी बसद शौक़ गुलाबी कर ले,
इतनी पी ले के ज़माने को शराबी कर दे,

जाम जब सामने आए तो मुक़रना कैसा,
बात जब पीने की आ जाए तो डरना कैसा,
धूम मची है, मैख़ाने में,
तू भी मचा ले धूम धूम धूम ।
झूम बराबर झूम शराबी, झूम बराबर झूम ।
इसके पीने ही से तबियत में रवानी आए,
इसको बूढ़ा भी पी ले तो ज़वानी आए,
पीने वाले तुझे आ जाएगा पीने का मज़ा,
इसके हर घूँट में पोशीदा है जीने का मज़ा,
बात तो तब है कि तू मय का परिस्तार बने,
तू नज़र डाल दे जिस पर वही मयख़्वार बने,
मौसमे गुल में तो पीने का मज़ा आता है,
पीने वालों को ही जीने का मज़ा आता है,
जाम उठा ले, मूँ से लगा ले,
मूँ से लगा के झूम झूम झूम,
झूम बराबर झूम शराबी, झूम बराबर झूम ।
जो भी आता है यहाँ पी के मचल जाता है,
जब नज़र साक़ी की पड़ती है सँभल जाता है,
आई हर झूम के साक़ी का लेके नाम उठा,
देख वो अब्र उठा, तू भी ज़रा जाम उठा,
इस क़दर पी ले के रग रग में सुरूर आ जाए,
क़सरते मय से तेरे चेहरे पे नूर आ जाये,
इसके हर क़तरे में नादाँ है निहाँ दरियादिली,
इसके पीने से अता होती है इक ज़िंदादिली,
शान से पीले, शाम से पीले,
झूम नशे में झूम शराबी, झूम नशे में झूम शराबी ।
झूम बराबर झूम शराबी, झूम बराबर झूम ।

अब ऐसा नहीं है कि सिर्फ़ शेर–ओ–शायरी या क़व्वालियों के जरिये ही मय और साक़ी की शान में क़सीदे पढ़े गए, बल्कि हिंदोस्तानी और पाकिस्तानी फिल्मों में लिखने वालों ने भी मय,

मैख़ाना, ज़ाहिद, वाइज़, साक़ी व रिंद जैसे लफ्ज़ इस्तेमाल कर समाज में फैली तमाम बुराइयों पर एक आलिम तन्नाज़ की तरह बुराइयों की तफ़्नीद की है । याद करें 'नया रास्ता' फिल्म का वो गाना जिसमें शायर ने क्या ख़ूब लताड़ लगाई है ये कहते हुये कि-

मैंने शराब पी, तुमने क्या पिया?
अरे तुमने क्या पिया, आदमी का ख़ूँ ।
मैं ज़लील हूँ, तुमको क्या कहूँ, तुमको क्या कहूँ ?
तुम पियो तो ठीक, हम पियें तो पाप,
तुम जियो तो पुण्य, हम जियें तो पाप,
तुम शरीफ़ लोग, तुम अमीर लोग,
हम तबाह हाल, हम फ़क़ीर लोग,
ज़िंदगी भी रोग, मौत भी अज़ाब,
मैंने पी शराब, मैंने पी शराब,
तुमने क्या पिया, आदमी का ख़ूँ ?
तुम कहो तो सच, हम कहें तो झूठ,
तुमको सब मुआफ़, ज़ुल्म हो के लूट,
तुमने कितने दिल चाक कर दिये,
कितने बसते घर ख़ाक कर दिये,
मैंने तो किया ख़ुद को ही ख़राब,
मैंने पी शराब, मैंने पी शराब,
तुमने क्या पिया, आदमी का ख़ूँ?
रीत और रिवाज़, सब तुम्हारे साथ,
धर्म और समाज, सब तुम्हारे साथ,
अपने साथ क्या, धूल और धुवाँ,
आज क्या है तुम नोच लो ज़ुबाँ,
आने वाला दौर, लेगा सब हिसाब,
मैंने पी शराब, मैंने पी शराब,
तुमने क्या पिया, आदमी का ख़ूँ?

लीडर फ़िल्म के लिए लिखे गाने के ज़रिये भी शायर ने समाज के बद्फ़ेल तौर तरीकों की बख़िया उधेड़ कर रख दी है-

मुझे दुनिया वालों शराबी न समझो,
मैं पीता नहीं हूँ पिलाई गई है ।
जहाँ बेखुदी में कदम लड़खड़ायें,
वही राह मुझको दिखाई गई है ।
नशे में हूँ लेकिन मुझे ये ख़बर है,
के इस ज़िंदगी में सभी पी रहे हैं,
किसी को मिले हैं छलकते प्याले,
किसी को नज़र से पिलाई गई है ।
किसी को नशा है जहाँ में ख़ुशी का,
किसी को नशा है ग़मे ज़िंदगी का,
कोई पी रहा है लहू आदमी का,
हरेक दिल में मस्ती रचाई गई है ।
ज़माने के यारो चलन हैं निराले,
यहाँ तन हैं उजले, मगर दिल हैं काले,
ये दुनिया है दुनिया, यहाँ माल-ओ-ज़र में,
दिलों की ख़राबी छुपाई गई है ।

या फ़िल्म **'दिल दिया दर्द लिया'** को ही ले लें जिसके लिए लिखने वाले शायर ने कितने ज़हीन तरीके से किरदार की तल्ख़ी की गीराई बड़े ही जज़्बाती ढंग से बयान की है-

कोई साग़र दिल को बहलाता नहीं,
बेख़ुदी में भी क़रार आता नहीं ।
मैं कोई पत्थर नहीं इंसान हूँ,
कैसे कह दूँ ग़म से घबराता नहीं ।

अब ये भी नहीं कहा जा सकता है कि फ़िल्मों में फ़क्त तंज़बयानी के लिए ही शराब और साक़ी को इस्तेमाल किया गया है, बहुत सी फ़िल्मों ने औरत मर्द के दिली जज़्बात, आपसी चाहत, मीठी मनुहार, रूठने मनाने जैसे मसअले भी बड़ी खूबी से उठाए है । खिलौना फ़िल्म का एक गाना सुनें, जिसमें माशूक़ के यह कहने

पर कि 'मैं शराबी नहीं मैं शराबी नहीं' और 'मुझ पै कर ले यक़ीं मैं नशे में नहीं', माशूक़ा का ये कहना 'किस लिए फिर सनम फिर डगमगाये क़दम', और 'अब पिये तो सनम तुझको मेरी क़सम' और 'एक क़तरा नहीं, बस ज़रा भी नहीं', क्या रूमानी शायर जनाब **आनंद बक्सी** साहब का लिखा यह गाना इश्क़ की शिद्दत को बयां नहीं करता?–

उठ गई महफ़िल, बुझ गई शम्मा,
करके रात गुलाबी जा,
एक घूंट भी और न पीने दूँगी, शराबी जा ।
मैं शराबी नहीं, मैं शराबी नहीं,
आँखों से पीने में कुछ ख़राबी नहीं ।
मुझ पै कर ले यक़ीं, मैं नशे में नहीं,
किस लिए फिर सनम फिर डगमगाये क़दम,
ये है मस्ती तेरी शर्बती आँख की,
ये नज़र है जनाब, ये नहीं है शराब,
रंग क्या इस नज़र का गुलाबी नहीं ।
अब पिये तो सनम तुझको मेरी क़सम,
इस तरह रूठ कर फेर ली क्यों नज़र,
आँख बोझल हुई, बोतल खाली हुई,
जी नहीं पर भरा और ला और ला,
एक क़तरा नहीं, बस ज़रा भी नहीं,
तू शराबी नहीं, तू शराबी नहीं ।

फ़िल्म **'फूल और पत्थर'** की उस शैतान सहनायिका का नायक को शराब पीने के लिए उकसाना भी ज़ेरे-ग़ौर है–

शीशे से पी या पैमाने से पी,
या मेरी आँखों के मैख़ाने से पी,
पी दीवाने, ख़ुशी से पी दीवाने ।

हाँ तो बात चल रही थी मय से मुतल्लिक, और बीच में फ़िल्मों का ज़िक्र लाना पड़ा । एक **नामालूम** शायर ने रिंदों के अच्छे

चालचलन का ज़िक्र कितनी नफ़ासत से किया, देखें -

इक हमीं हैं कि बहक जाते हैं तौबा की तरफ़,
वरना रिंदों में बुरा चाल-चलन किसका है ?

तो दूसरे शायर ने मौसम के मिजाज़ और मय की युगलबंदी के सामने अपनी तौबा के कमज़ोर होने को कितनी पर्दगी के साथ बयाँ किया है-

जोश-ए-मय और सब्ज़ाज़ारों में घटा छाई हुई,
बात ऐसी है कि तौबा भी है, ललचाई हुई ।

अपना अपना तरीक़ा है, जहाँ जिगर साहब साक़ी को इल्ज़ाम न देने की आरज़ू रखते हैं, जनाब **बेहज़ाद** साहब बेहद सलीके से तौबा तोड़ने का सारा ज़िम्मा साक़ी के सिर डाल कर चलते बने-

ज़ाहिद शिकस्त-ए-तौबा का का इतना सा राज़ है,
साक़ी की चश्म-ए-नूर को बरहम न कर सके ।

जैसा नाम वैसा काम । जनाब **काशिफ़** साहब ने भी यही राज़ बताया तौबा तोड़ने का-

जब भी घुटने लगा सीने में दम, पी है शराब,
ज़ब्त की हद से बढ़े जब रंज़-ओ-ग़म, पी है शराब ।
मुझपे इल्ज़ाम-ए-बालानोशी सरासर है ग़लत
जिस क़दर आँसू पिये हैं, उससे कम, पी है शराब ।
जब कभी साक़ी से अय 'काशिफ़', निगाहें मिल गईं
तोड़ कर मैंने न पीने की क़सम, पी है शराब ।

मय से मुतल्लिक शायरी के शौक़ीन अगरचे कुछ दिलफ़राज़ शायरी सुनना चाहते हैं तो उनकी मुराद, बिना जनाब **अहमद फ़राज़** को सुने पूरी नहीं होने वाली है-

कल हमने बज़्म-ए-यार में, क्या क्या शराब पी,
सहरा की तश्नगी थी, तो दरिया शराब पी ।

दो जाम उनके नाम भी, अय पीर-ए-मयकदा,
जिन रफ़्तगां के साथ, हमेशा शराब पी ।
अय तू के तेरे दर पे हैं रिंदों के जमघटे,
इक रोज़ इस फ़क़ीर के घर, आ शराब पी ।
एक मेहरबान बुज़ुर्ग ने ये मशवरा दिया,
दुख का कोई इलाज़ नहीं, जा शराब पी ।
दो सूरतें हैं यार बस, दर्द-ए-फ़िराक़ की,
या उसके ग़म में टूट के रो, या शराब पी ।
अय दिल गिरफ़्ताँ-ए-ग़म-ए-ज़हान सुबू उठा,
अय काश्ता-ए-ज़फ़ा-ए-ज़माना शराब पी ।
अपनों ने तज दिया है तो ग़ैरों में जा के बैठ,
अय ख़ाना-ए-ख़राब न तन्हा शराब पी ।
कल हमसे अपना यार ख़फ़ा हो गया 'फ़राज़',
शायद कि हमने हद से ज़ियादा शराब पी ।

सहारा=रेगिस्तान, रफ्तगां = मर चुके, गुजरे हुये,
गिरफ़्ता-ए-ग़म-ए-ज़हान = सांसारिक दुखों से घिरा हुआ,
काश्ता-ए-ज़फ़ा-ए-ज़माना = ज़फ़ा की खेती करने वाले,
ख़ाना-ए-ख़राब = जिसका घर-बार सब कुछ नष्ट हो चुका हो ।

और अगर इतने पर भी कुछ कसक बाक़ी रह गई हो तो नोश फ़र्मायें पुराने, आला बासमती चावलों का ज़ायका, इस एहतमाद के साथ कि इससे बढ़िया कुछ कम लोग ही कह पाये होंगे। जी हाँ आप दुरुस्त समझ रहे हैं, मैं, पीर-ए-शायरी मोहतरम जनाब **असदउल्लाह ग़ालिब** की ही बात कर रहा हूँ-

फिर देखिये अंदाज़-ए-गुलफ़सानी-ए गुफ़्तार,
रख दे कोई पैमाना-ए-सेहबा मेरे आगे ।
गो हाथ को जुंबिश नहीं, आँखों मे तो दम है,
रहने दो अभी साग़र-ओ-मीना मेरे आगे ।
ईमान मुझे रोके है, तो खींचे है मुझे कुफ़्र,
काबा मेरे पीछे है, कलीसा मेरे आगे ।

अंदाज़-ए-गुलफ़सानी-ए गुफ़्तार = फूलों सा अंदाज़ व फूलों की बातें।

()()()

हर चंद हो मुशाहदा-ए-हक़ की गुफ़्तगू,
बनती नहीं है बादा-ओ-साग़र कहे बग़ैर ।
मुशाहदा = तजुर्बा

()()()

उधार की पीते थे मय, और कहते थे कि,
रंग लाएगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन ।

()()()

तूने क़सम मयकशी की खाई है ग़ालिब,
तेरी क़सम का कुछ एतबार नहीं है ।

()()()
ये मसाइल-ए-तसव्वुफ़, ये तेरा बयान ग़ालिब,
तुझे हम वली समझते, जो न बादाख़्वार होता ।
मसाइल-ए-तसव्वुफ़ = सूफियों, पीर-मौलवियों के मसले,

एक **नामालूम** साहब ने भी साक़ी को ही निशाना बनाते हुये बच निकलने की तरतीब की-

देख कर आपकी जवानी को, आरज़ू-ए-शराब होती है,
रोज़ ही तौबा करता हूँ, रोज़ नीयत ख़राब होती है ।

मोहतरम **ज़ामिन अली ज़लाल** साहब बहुत ही उस्ताद हैं, अब आप ही देखें कि किस क़दर शातिराना तरीक़े से शैख़-ओ-बरहमनों

को गच्चा दे रहे हैं, जी हाँ आप सही समझे–

शाम को मय खूब पी, सुबह को तौबा कर ली,
रिंद के रिंद रहे, हाथ से जन्नत न गई ।

मोहतरम **क़तील शिफ़ाई** साहब की फ़िक्र भी वाज़िब है–

निकल कर दैर–ओ–काबा से अगर मिलता न मैख़ाना,
तो ठुकराये हुये इंसाँ, ख़ुदा जाने कहाँ जाते ?
दैर–ओ–काबा = मंदिर–मस्ज़िद

चलिये, मैं मान लेता हूँ कि अब तक तो आप मान ही चुके होंगे कि जानेउक़्बा (नेक अमल) इस मए–मुकद्दस के लिए जो, जो इन अदीबों ने क़सीदे पढ़े हैं, वे इसी बात की ओर इशारा करते हुये जान पड़ते हैं कि यह एक नेक अमल है, इससे मोहब्बत करने में किसी क़िस्म की हिचक नहीं होनी चाहिए ।

मरहूम जनाब **डा० दौलत राम 'साबिर' पानीपतीजी** की मय से मुतल्लिक चुटकियों को सुनने सुनाने का बड़ा मन कर रहा है, सुनें–

मेरी तक़रीर से ज़ाहिद को सुरूर आ ही गया,
फिर भी कुछ झेंप के बोला कि ख़ुदा है तो सही ।

()()()

मिरी मैकशी का गिला न कर,
ये फटी फटी सी जो है नज़र ।
न सुरूर है न ख़ुमार है,
ये जुनूँ का हल्का सा है असर ।
()()()

बहुत अच्छा हुआ महफ़िल से उठकर चल दिये 'साबिर',
भरे बैठे थे, कोई गुल खिला देते तो क्या होता?

()()()

मुझको ये पीर-ए-मुगाँ, है बेख़ुदी से वास्ता,
पी गया हूँ किस क़दर, साग़र से, पैमाने से पूछ ।

()()()

रिंदों ने बढ़कर थाम लिया, शैख़जी का हाथ,
जन्नत में आ रहे थे, बेचारे नए नए ।

()()()

मैख़ाने की मस्त फ़ज़ाएँ और पियाले भरे भरे,
अहल-ए-ख़िरद की बद्‌बख़्ती, नाराज़ खड़े हैं परे परे ।

()()()

न इश्क़ ज़ाहिद को रास आया, न मैकशी उसके काम आई,
कोई बताए कि किससे आख़िर हम ऐसे ज़ाहिल की बात करें ।

()()()

ये तो मैकदा है नासेह, यहाँ ख़ुद सँभल के रहियो,
यहाँ हर रिवाज़ उल्टा, यहाँ हर बशर निराला ।

और इसी उल्टे रिवाज़ का ज़िक्र मोहतरमा **शर्मिष्ठा पाण्डेयजी** ने इतनी बख़ूबी बयान किया कि दिल से एक ही आवाज़ उठती है कि वाह, वाह, वाह, वाह, और वाह वाह । तो आप भी करें वाह, वाह, इरशाद, मरहबा, सुभानल्लाह-

आज मैख़ाने में हैरतअंगेज़ काम हुये,
होश में मैख़्वार, साक़ी पे इल्ज़ाम हुये ।
यूँ तो कुछ भी न था शराब में सिवा तल्ख़ी,
उसने होठों से जो लगाया तो बदनाम हुये ।
मयकशी दीन है ईमान, धड़कन 'शपा' की,
औ मंदिरों, मस्ज़िदों में क़त्लेआम हुये ।
आशोब–दर्द तन्हा तन्हा क्यों फिरता है,
सब उनकी नज़र से दीवानेवाम हुये ।
मदारत में माहिर ये, ये मयख़ाना अपना,
दर्द प्यालों में उढ़ेला, तो वही जाम हुये ।
शपा = शर्मिष्ठा पाण्डेयजी, आशोब = उथल–पुथल, इंकलाब,
मदारत = आवभगत, स्वागत–सत्कार ।

जनाब **'नामालूम'** साहब तो बाक़ायदा अपने शराबी होने की मुनादी पीट रहे हैं, पर उन्हें इतना होश है कि वो आपके दिल की हालत को बख़ूबी समझते हैं–

रक़्स फ़र्माओ मैं शराबी हूँ,
झूम कर गाओ मैं शराबी हूँ ।
एक सज़दा बनामे मैख़ाना,
दोस्तो आओ मैं शराबी हूँ ।
लोग कहते हैं रात बीत चुकी,
मुझको समझाओ मैं शराबी हूँ ।
हादसे रोज़ होते रहते हैं,
भूल भी जाओ मैं शराबी हूँ ।
आज इन रेशमी घटाओं को,
यूँ न बिख़राओ मैं शराबी हूँ ।
मुझ पे ज़ाहिर है आपका बातिन,
मूँ न खुलवाओ मैं शराबी हूँ ।

मेरा दावा है कि अगर आप मोहतरम जनाब **हफ़ीज जालंधरी** साहब को सुन लेंगे तो फिर मुश्किल है कि आप इस जाने–उक़्बा

शय से फ़रागात पा सकें । सुनना चाहेंगे ? चलिये सुनाता हूँ–

शराब–ख़ाना है बज़्म–ए–हस्ती
हर एक है महव–ए–ऐश ओ मस्ती
मआल–बीनी ओ मय–परस्ती
अरे ये ज़िल्लत अरे ये पस्ती
शिआर–ए–रिंदाना कर, पिए जा ।

अगर कोई तुझ को यूँ टोकता है
शराब पीने से रोकता है
समझ इसे होश में ही नहीं है
ख़िरद के आगोश में भी नहीं है
तू उस से झगड़ा न कर, पिए जा ।

ख़्याल–ए–रोज–ए–हिसाब कैसा
शबाब कैसा, अज़ाब कैसा
बहिश्त ओ दोज़ख़ के ये फ़साने
ख़ुदा की बातें ख़ुदा ही जाने
फ़ज़ूल सोचा न कर, पिए जा ।

नहीं जहाँ में मुदाम रहना
तो किस लिए तिश्नाकाम रहना
उठा उठा हाँ उठा सुबू को
तमाम दुनिया की हाव हू को
ग़रीक़–ए–पैमाना कर, पिए जा ।

किसी से तक़रार की क्या जरूरत
फ़ज़ूल इसरार की क्या ज़रूरत
कोई पिए तो उसे पिला दे
अगर न माने तो मुस्कुरा दे
मलाल–ए–असला न कर, पिए जा ।

तुझे समझते हैं अहल-ए-दुनिया
ख़राब ख़स्ता जलील रुस्वा
नहीं अयाँ उन पे हाल तेरा
कोई नहीं हम-ख़याल तेरा
किसी की परवा न कर, पिए जा ।

ये तुझ पर आवाज़ें कसने वाले
तमाम हैं मेरे देखे भाले
नहीं मज़ा उन को मयकशी का
ये ख़ून पीते हैं आदमी का
तू उन का शिक्वा न कर, पिए जा ।

मआल-बीनी=परिणाम के बारे में खूब सोच समझ कर काम करना,

शिआर-ए-रिंदाना = रिंद की तरह का चाल-चलन अपना कर,

ख़िरद = अक़्ल, मुदाम = हमेशा के लिए, ग़रीक़-ए-पैमाना = पैमाने में डूब जाना ।

आप अगर अब भी किसी तरह की कोई पशोपेश में हों तो कुछ और इल्मबरदारों के बयान सुनाता हूँ । नाम मैं नहीं बताऊंगा, बस अश्आर भर पेश करूंगा इस उम्मीद के साथ कि आप अब भी मेरी बात पर यक़ीन करें और जो मैं इतनी देर से कहने की कोशिश कर रहा हूँ उसे मानी मिल जाएँ । तो लीजिये पेशेख़िदमत है इसी उनवान से मुतल्लिक़ कुछ और क़सीदे-

तरदामिनी पै शैख़ हमारी न जाइए,
दामन निचोड़ दूँ तो फ़रिश्ते वज़ू करें ।

()()()
ये है मैकदा, यहाँ रिंद हैं, यहाँ सबका साथी इमाम है,
ये हरम नहीं है शैख़जी, यहाँ पारसाई हराम है ।

कोई मस्त है, कोई तश्नालब, तो किसी के हाथ में जाम है,
मगर इसका कोई करेगा क्या, यह मैकदे का निज़ाम है ।
मैं बहक रहा हूँ तो क्या हुआ, ये तो मैकदे का निज़ाम है,
मेरी लग्ज़िशों पै न जाइए, ये जवाब-ए-गर्दिश-ए-जाम है ।
है जनाबे शैख़ का फ़लसफ़ा, भी अज़ीब सारे ज़हान से,
जो वहाँ पियो तो हलाल है, जो यहाँ पियो तो हराम है ।
लग्ज़िश = लड़खड़ाहट

()()()

नासेहा नार-ये-ज़हन्नम से डराता है मुझे,
मैं तो हर रोज़ पिघली आग पिया करता हूँ ।
नार-ये-ज़हन्नम = दोज़ख़ की आग

()()()

जनाबे शैख़ हम में और तुम में फ़र्क़ इतना है,
कि तुम मस्ज़िद में पीते हो, मैं मैख़ाने में पीता हूँ ।
()()()

पत्थर नज़र थी वाइज़े ख़ानाख़राब की,
टूटी है क्या तड़ाक से, बोतल शराब की ।

()()()

फ़रेबे ख़ुल्दे बरी और तेरे दीवाने,
वो शैख़ होश में आए, चला है बहकाने ।

()()()

हमेशा बादाख़्वारों पर ख़ुदा महरवाँ देखा,
जहां बैठे घटा उट्ठी, जहां पहुंचे बहार आई ।

()()()

इस मैकदे में हर शख़्स शैख़ का जासूस है,
मैंने तौबा तोड़ दी, इसलिए मायूस है ।

()()()

चश्मे–साक़ी आ गई है याद किस मयनोश को,
जाम छलका हिचकियाँ लेने लगे साग़र सुबू ।

()()()

जनाबे शैख़ की तौबा को तोड़ने के लिए,
क़दम–क़दम पै बनाए गए हैं मैख़ाने ।

()()()

बदन में आग सी, चेहरा गुलाब जैसा है,
के ज़हर–ए–ग़म का नशा शराब जैसा है ।

()()()

क्या शराब–ए–नाज़ ने पस्ती में पाया है उरुज़,
सर चढ़ी है हल्क़ से, नीचे उतर जाने के बाद ।

()()()

शराब–ए–ग़म–ए–इश्क़ है, साक़ी की ज़रूरत है किसे,
गोशा–ए–दिल में, लब–बा–लब ये पैमाने मिले ।

()()()

मुझे अपना दर्द कुछ पी लेने दे,
लम्हा दो लम्हा जी लेने दे ।

()()()

ख़ुदा के हाथ है बिकना न बिकना मय का अय साक़ी,
बराबर मस्ज़िद–ए–ज़ामा के, हमने अब दुकां रख दी ।

()()()
चलो पी लें, यार आए, न आए,
ये मौसम बार बार आए न आए ।

()()()

दिल शिकस्ताँ है, निकल आते हैं आँसू अक़्सर,
मय टपक पड़ती है, टूटे हुये पैमाने से ।

()()()

मैख़ाना–ए–हस्ती में अक़्सर,
हम अपना ठिकाना भूल गए ।
या होश से जाना भूल गए,
या होश में आना भूल गए ।
()()()

रिंदे हाल को ख़राब ज़ाहिद न छेड़ तू,
तुझको पराई क्या, अपनी निबेड़ तू ।

()()()

कुछ साग़रों में ज़हर है कुछ में शराब है,
ये मसअला है, तिश्नगी, किससे बुझाई जाय ?

()()()

इतनी पी है कि बाद तौबा भी,
बे-पिये बेख़ुदी सी रहती है ।

()()()
हम मयकशों के क़दमों पै अक़्सर,
झुक गए हैं मेहराब-ओ-मिंबर ।
अब मैकदे का आलम न पूछो,
एक शीशा-ए-दिल, और लाखों पत्थर ।
मेहराब = घेरा, मिंबर - मस्ज़िद का वह ऊंचा स्थान जहां इमाम ख़ुत्बा पढ़ता है ।

()()()

खरीदा जा नहीं सकता है, साक़ी ज़र्फ रिंदों का,
कई शीशे पिघलते हैं, तो इक पैमाना बनता है ।

()()()

हम अपनी शाम को जब, नज़र-ए-जाम करते हैं,
अदब से हमको, सितारे सलाम करते हैं ।

()()()

शैख़जी थोड़ी सी पी लो आज तो,
अंधेरी रात है, कौन देखेगा ?

()()()

ग़र्क़–ए–जाम–ओ–शराब हो के 'शकील',
शग़्ल–ए–जाम–ए–शराब कौन करे ?

()()()

बादाकशी हराम है, या ज़िंदगी हराम,
तस्दीक़ कर रहा हूँ, ग़म–ए–रोज़गार से ।
ग़म–ए–रोज़गार = दुनियावी दुख

()()()

मुश्किल ये आ पड़ी है कि गर्दिश में जाम है
अय होश वरना मुझको, तेरा एहतराम है ।

()()()

तेरे जहां में जब तक कोई, निज़ाम नहीं,
फ़क़ीर के लिए बादाकशी, हराम नहीं ।

()()()
अभी हवादिश–ए–दौरां पै कौन ग़ौर करे,
अभी तो महफ़िल–ए–हस्ती शराब़खाना है ।

हवादिश-ए-दौरां = दुनियावी दुर्घटनाएँ

()()()

कहो बज़्म-ए-जमशेद के साक़ियों से,
फ़क़ीर-ए-दर-ए-मैकदा की दुआ लें ।

()()()

पीता हूँ हादिसात के इर्फ़ान के लिए,
मय एक तजुर्बा है, ग़म-ए-रोज़गार का ।
इर्फ़ान =विवेक, ज्ञान

()()()

जाते थे मुँह छिपाए हुये, मैकदा को हम,
आते हुये उधर से कई, पारसा मिले ।

()()()

मैख़्वार को है भरम, कि क़ाज़ी ने कह दिया,
पीना शराब का भी, जरूरत में चाहिए ।

()()()

कुछ होश हो तो 'दाग़' को समझाएँ नेक-बद,
डूबा हुआ है नश्शा-ए-जाम-ए-शराब में ।

()()()

तौबा के टूटने का मुझे भी मलाल है,
पर क्या करें के शहर में, बरसात हो गई ।

()()()

मयपरस्तो ! आओ कर दें मोहत्सिब को संगसार,
बच रहे हैं संग कुछ, मैख़ाने की तामीर से ।

()()()

मिलती है उम्र–ए–आबाद, इश्क़ के मैख़ाने में,
अय अजल तू भी समा जा, मेरे पैमाने में ।
अजल = मौत, प्रलय

()()()
शराब–ओ–शबिस्ताँ का मारा हूँ मैं,
वो गर्क़–ए–शराब–ए शबिस्ताँ नहीं मैं ।
शबिस्ताँ = गलियारा, शयनकक्ष

()()()

मुझे सुने न कोई मस्त–ए–बादा–ए–इशरत,
'मजाज़' टूटे हुये दिल की सदा हूँ मैं ।
इशरत = सुख

()()()
मेरे अश्क़ भी हैं इसमें, ये शराब उबल न जाए,
मेरा जाम छूने वाले, तेरा हाथ जल न जाए ।
()()()
कुछ मुहत्सिबों की ख़िलअत में, कुछ वाइज़ के घर जाती है,

हम बादाकशों के हिस्से की, अब जाम में कम कम आती है ।

मुहत्सिबों = शराब पीने से रोकने वाले, शराबखाने की निगरानी करने और पैसा बसूलने वाले, ख़िलअत = बड़ों की ओर से रिआया को दिया जाने वाला भोज ।

()()()

पूछिए मैकशों से लुत्फ़े शराब,
ये मज़ा पाकबाज़ क्या जानें ?

()()()

हुस्न को बेहिज़ाब होना था,
शौक़ को क़ामयाब होना था,
हिज्र में कैफ़-ए-इज़्तिराब न पूछ,
ख़ून-ए-दिल भी शराब होना था ।

बेहिज़ाब = बेपरदा, कैफ़-ए-इज़्तिराब = व्याकुलता का मजा ?

()()()

हम बादाकश पाँव न रक्खें बहिश्त में,
जब तक हमारे सामने, जाम-ओ-सुबू न हो ।

()()()

रात हँस-हँस के कहती है, के मैख़ाने में चल,
फिर किसी शाहनाज़-ए-लालारुख़ के काशाने में चल ।

शाहनाज़-ए-लालारुख = शाही नाज़-नख़रे व लाल गालों वाली
काशाने = छोटा सा घर, कुटिया

()()()

ज़ाहिद मज़ा तो तब है, अज़ाब-ओ-शबाब का,
दोज़ख़ में बादाकाश न हों, ज़न्नत में तू न हो ।

()()()

सीना मेरा सुबू है मय-ए-इश्क़ के लिए,
आँखें पियाला हो गईं, दिल जाम हो गया ।

()()()

नज़र-ए-तग़ाफ़ुल-ए-यार का, गिला किस ज़ुबाँ से करूँ,
बयान की सैकड़ों आरज़ू, ख़ुम-ए-दिल में थी सो बनी रहीं ।
तग़ाफ़ुल = उपेक्षा

()()()

महकी हुई फ़ज़ाओं को, आओ मैकशों न्ग्मारेज़ करें,
गर्दिश-ए-वक़्त थम जाए, गर्दिश-ए-जाम इतना तेज़ करें ।

()()()

ये किसने कह दिया के यारो छुप-छुपा के पियो,
अंधेरी रात में यारो, दिये जला के पियो ।

()()()

समझाने वाले सब मुझे, समझा के रह गए,
लेकिन मैं एक-एक को समझा के पी गया ।

()()()

ये कह दो जाके वाइज़ से, अगर समझाने आए हैं,
कि हम दैर–ओ–हरम होते हुये, मैख़ाने आए हैं ।

()()()

लिक्खा हुआ है पीर–ए–मुगाँ की दुकान पर,
कमज़र्फ़ को हराम है, पीना शराब का ।

()()()

जिसको देखो मैकदे की सिम्त भागा आए है,
किसका किसका ग़म करेगी, दूर बेचारी शराब ?

()()()
जब से कमज़र्फ़ों के पल्ले पड़ गई है ये दिलरुबा,
कूचा–ओ–बाज़ार में बदनाम हो कर रह गई ।
ये शराबे आब ये मस्तों की मंज़ूरे नज़र,
क्या मुबारक् शय थी, जिंस–ए–आम हो कर रह गई ।

()()()

जाम–ए–मय तौबा शिकन, तौबा मेरी जाम–ए–शिकन,
सामने इक ढेर है, टूटे हुये पैमानों का ।

()()()

आए कुछ अब्र, कुछ शराब आए,
उसके बाद आए, जो अज़ाब आए ।

()()()

मुहत्सिब की ख़ैर हो, ऊँचा है उसके फ़ैज़ से,
रिंद का, साक़ी का, मय का, और पैमाने का नाम ।

मुहत्सिब = शराब पीने से रोकने वाले, शराबखाने की निगरानी करने और पैसा बसूलने वाले ।

()()()

कुछ मुहत्सिब का ख़ौफ़, या कुछ शैख़ का लिहाज़,
पीता हूँ छिप के, दामन–ए–अब्रे बहार में ।

()()()

क्योंकर न लुत्फ़ बादाकशी का हो आब में,
बारिश में जो हुरूफ़ हैं, वो हैं शराब में ।

()()()

मैं तो जब मानूँ के भर दे साग़र–ए–हर–ख़ास–ओ–आम,
यूँ तो जो आया, वही पीर–ए–मुग़ाँ बनता गया ।

()()()

रखते हैं पाक दिल को, नीयत–औ–निगाह को,
पीते हैं हम शराब, बड़े एहतराम से ।
()()()

जब सारा जहां सो जाता है, और शब आधी रह जाती है,
उस वक़्त शराबे–इलल्ला, मस्तों को पिलाई जाती है ।
()()()

मिला के शबनम में, रंग–ओ–निख़्त–ए–गुल,
कोई शराब बनाओ, बहार के दिन हैं ।
निख़्त = सुख

()()()

जब मैकदा छूटा, तो फिर क्या हो जगह की क़ैद,
मस्ज़िद हो, मदरसा हो, या कोई ख़ानक़ाह हो ।
ख़ानक़ाह = पीर, फ़क़ीरों के रहने का स्थान

()()()

पहुंची यहाँ भी शैख़–ओ–बरहमन की गुफ़्तगू,
अब मैकदा भी, सैर के क़ाबिल नहीं रहा ।

()()()

सर्फ़–ए–बहा–ए–मय हुये आलात–ए–मैकशी,
थे ये ही दो हिसाब, सो यूँ पाक हो गए ।
सर्फ़ = व्यय, बहा = कीमत, शोभा,
आलात–ए–मैकशी = मैकशी के औजार

()()()

अगले वक़्तों के हैं ये लोग, इन्हें कुछ न कहो,
मय और न्ग़्मा को जो अन्दोह–ए–रुबा कहते हैं ।
अन्दोह–ए–रुबा = दुखों को भगाने वाली

()()()

इस कूये तिश्नगी में, बहुत है कि इक जाम,
हाथ में आ गया है, दौलत–ए–बेदार की तरह ।

()()()

तौहीन मैख़ाने की है, औ हत्क़ है रिंदान की,
जो भूल से भी दे दिया कमज़र्फ़ को जामे शराब ।
हत्क़= बेइज्जती

()()()

गो जाम मेरा ज़हर से लबरेज़ बहुत है,
क्या जानिए क्यूँ पीने से परहेज़ बहुत है ।

()()()

नसीहत–ए–वाइज़ का हम पे ये असर हुआ,
पहले तो रिंद थे, अब मैख़ाने में घर हुआ ।

()()()
मैकदे में हो गए चुपचाप क्यों,
आज कुछ मस्त–ए–शराब अच्छी नहीं ?

()()()

ज़िंदगी में भी रहा, ज़ौक़–ए–फ़ना का मारा,
नशा बख़्शा ग़ज़ब, उस साग़र–ए–खाली ने मुझे ।
ज़ौक़–ए–फ़ना = मरने का शौक
()()()

हों जो दस–बीस शराबी तो करें तौबा भी,
शहर का शहर है, डूबा हुआ मैख़ाने में ।

()()()

तौबा की, फिर तौबा की, फिर तोड़ दी,
मेरी तौबा पर तो तौबा, तौबा कर उठी ।

()()()

मस्ज़िद ख़ुदा का घर है, पीने की जगह नहीं,
क़ाफ़िर के दिल में जा, वहाँ पर ख़ुदा नहीं ।

()()()

पीऊँ शराब के हम भी देख लें दो–चार,
ये शीशा–ओ–क़दह–ओ–कूज़ा–ओ–सुबू क्या है?
क़दह = प्याला, कूज़ा = सकोरा(कटोरा), सुबू = घड़ा

()()()

इधर किया क़रम किसी पे, उधर जता दिया,
नमाज़ पढ़ के आए और शराब माँगने लगे ।

()()()

बहुत सही ग़म–ए–गेती, शराब क्या है,
गुलाम–ए–साक़ी–ए–कौसर हूँ, मुझको ग़म क्या है ।
ग़म–ए–गेती = सांसारिक दुख
()()()

नशा–ए–इश्क़ का गर ज़र्फ़ दिया था मुझको,
उम्र का न तंग पैमाना बनाया होता ।

()()()

मैख़ाने से, शराब से, साक़ी से, जाम से,
अपनी तो ज़िंदगी शुरू होती है शाम से ।

()()()

एक पल के लिए जो मैं ख़ुदा हो जाऊं,
सारी दुनिया को अंगूर का पानी दे दूँ ।

()()()

हर शब शबे–बारात है, हर रोज़ रोज़े ईद,
सोता हूँ हाथ गर्दने–मीना में डाल कर ।

()()()

मान मौसम का कहा, छाई घटा जाम उठा,
आग से आग बुझा, फूल खिला जाम उठा ।
हाथ में जाम जहाँ आया, मुक़द्दर चमका,
सब बदल जाएगा क़िस्मत का लिखा, जाम उठा ।
प्यार ही प्यार है, सब लोग बराबर हैं यहाँ,
मैकदे में कोई छोटा न बड़ा जाम उठा ।

तो गोया अब तो आप मान ही गए होंगे । क्या ? अब भी कुछ एतमाद नहीं आ रहा मए–इश्क़ के इन ब–लुत्फ़ क़सीदों पर। चलिये

मैं कोशिश करता हूँ ख़ुद भी समझने और आपको भी समझाने की।
दरअसल इतने नामवर अदीबों का कहा हुआ इतनी आसानी से समझ में भी तो नहीं आता है ।

अलमस्त फ़क़ीर जनाब **कबीर** को यह एज़ाज़ हासिल है कि कड़ुवी से कड़ुवी बात वे बिना किसी सरीयती या हुकूमती ख़ौफ़ के आसानी से कह जाते थे ।

यही बात इन तमाम अदीबों ने शैख़-ओ-बरहमन को आड़ बना कर समाज में फैली तमाम बुराइयों को मय मान, तानों और व्यंगों की मदद से, या यूँ कहिए कि उन्होंने परवरदिगार-ए-आलम की इबादत को अपनाने के लिए, मय, रिंद, साक़ी, सुबू, साग़र, पैमाना जैसे संकेतों के ज़रिये आपको उकसाने की कोशिश की है, उजागर करने की कोशिश की है, बस इतना ही ।

जनाब मैं भी आप वाली फ़ेहरिस्त में शामिल हूँ जो यह मानने को क़तई राज़ी नहीं है कि शराब जैसी शय भी किसी का भला कर सकती है, और यह जानेउक़्बा का रुत्बा रखती है ।

जाम पीता हूँ तो, मुँह से कहता हूँ बिस्मिल्लाह,
कौन कहता है कि रिंदों को ख़ुदा याद नहीं ।

साक़ी

आया हूँ मयकदे में, तू बेहिसाब दे दे,
साक़ी शराब देदे, साक़ी शराब दे दे ।

दीवाना हूँ मैं तेरा, पैमाना माँगता हूँ,
बोतल की बात क्या है, मैख़ाना माँगता हूँ,
पीने का ज़िक्र साक़ी, रोज़ाना माँगता हूँ,
तेरे क़रम का अदना, नज़राना माँगता हूँ,
वो पैक़र-ए-ज़माल का, हुस्न-ए-शबाब दे दे ।

पानी बरस के थम गया, बदली भी छट गई,
इक दौर ही चला था, कि बरसात कट गई,
साक़ी तेरी निगाह से, क़िस्मत पलट गई,
मैकश के दिल की तश्नालबी, जो थी मिट गई,
इक बार फिर पिलादे, या तू जवाब दे दे ।

रिंदों में गुल मचा है, पैमाने झूमते हैं,
इक जाम पी के सारे मस्ताने झूमते हैं,
शम्मा पे जिस तरहा से, परवाने झूमते हैं,
पीते हैं हम शराब, और मैख़ाने झूमते हैं,
महसर में मिलेगा, तुझे इसका सवाब, दे दे ।

तूने पिला के साक़ी, सबको तबाह किया है,
इसका हिसाब होगा ये तूने क्या किया है,
बदनाम नाम तूने अंगूर का किया है,
क़ातिल! 'शमी' ने फिर भी, तुझसे निबाह किया है,
हम होश में हैं अब तक, साक़ी शराब देदे ।

()()()

मैंने नज़रों से पी, पी नहीं जाम से,
ये नशा वो नहीं जो उतर जाएगा,
आज नज़रों से नज़रें अगर न मिलीं,
तेरा आशिक़ तेरे दर पे मर जाएगा ।

केश उलझा के आओ जरा वाम पर,
जान–ओ–तन, सर भी कुर्बां हैं इस जाम पर,
रुख़–ए–माहताब की इक झलक देख लूँ,
वक़्त बाक़ी नशे में गुज़र जाएगा ।

ये वो मय है के जिसमें फ़ितूरत नहीं,
और मय की कहीं अब ज़रूरत नहीं,
एक नज़र देख तेरा बिगड़ता है क्या,
मेरा बिगड़ा मुक़द्दर सँवर जाएगा ।

दर पे साइल खड़ा कर रहा है सदा,
कुछ तो ख़ैरात दे दे बनामे ख़ुदा,
मयकदा तेरा साक़ी सलामत रहे,
नाम ले–ले ये उफ़ 'ताज' थक जाएगा ।

और अज़्मत को हरगिज़ नहीं कोई ग़म,
तुझसे तुझ ही को माँगूँ मैं तेरी क़सम,
तेरे ग़म में अगर हो गए दम बदम,
साथ ही मेरे दर्द–ए–जिगर जाएगा ।

()()()

साक़िया जाएँ कहाँ, हम तेरे मैख़ाने से,
शहर के शहर नज़र आते हैं वीराने से ।
ये जो कुछ लोग नज़र आते हैं दीवाने से,
इनको मतलब है न साक़ी से न पैमाने से ।
जोड़ कर हाथ ये साक़ी है गुज़ारिश मेरी,
मुझको आँखों से पिला, ग़ैर को पैमाने से ।
मुझको आते हुये 'नासिर' तो सभी ने देखा,
देखा जाते न किसी ने, मुझे मैख़ाने से ।
()()()

साग़र है मेरा खाली, ला दे शराब साक़ी,
है रात ढलने वाली, ला दे शराब साक़ी ।
मौसम बहार का है, मंज़र अजीब सा है,
छाई घटाएँ काली, ला दे शराब साक़ी ।
हम भी हैं मयकदे में, तू सब को दे बराबर,
ये कैसी बेख़याली, ला दे शराब साक़ी ।
नाक़ामियों ने हमको, संजीदा कर दिया है,
चेहरे पै हो बहाली, ला दे शराब साक़ी ।
()()()

मुझे क़सम है साक़िया, शराब ला, शराब दे,
उठा सुबू नज़र मिला, शराब ला, शराब दे ।
हरेक ऐसा जाम हो के जिस पे तेरा नाम हो,
तू अपने नाम की पिला, शराब ला, शराब दे ।
न दिल में कोई ग़म रहे, न मेरी आँख नम रहे,
हरेक दर्द को मिटा, शराब ला, शराब दे ।
बहुत हसीन रात है, तेरा हसीन साथ है,
नशे में कुछ नशा मिला, शराब ला, शराब दे ।
शुरूर है, ख़ुमार है, बहार ही बहार है,
मगर ज़रा ऐ दिलरुबा, शराब ला, शराब दे ।

()()()
जब कभी साक़िए, मदहोश की याद आती है,
नशा बनकर, मेरी रग रग में समा जाती है ।
डर ये है टूट न जाए, कहीं मेरी तौबा,
चार ज़ानिब से घटा, घिर के चली आती है ।

()()()

जाम आँखों से सरे महफिल पिलाया जाएगा,
मयकशी का दोष, रिंदों पर लगाया जाएगा ।

()()()

ये हालत हो गई है, एक साक़ी के न होने से,
कि ख़ुम के ख़ुम भरे हैं, और मैख़ाना खाली है ।

()()()

उनकी मस्त आँखों से कुछ ऐसी अक़ीदत हो गई,
जाम मज़हब हो गया, सह्बा सरीयत हो गई ।

()()()

हैं तेरे बज़्म के क़ुर्बान सद परीख़ाने,
तेरी नज़र की लताफ़त, शराब क्या जाने ।

()()()

ग़रज़ न मय से, न पाबंदे जाम मस्ताने,
किसी की मस्त अदाई के हैं ये दीवाने ।

()()()

हम चले आए हैं पीने तेरी आँखों की शराब,
वरना अय साक़ी तेरे मैख़ाने में रक्खा क्या है ?

()()()

साक़ी बस तू इतना काम कर,
ये सारे इल्ज़ाम मेरे नाम कर ।
एक–दो पैमाने से मेरा क्या होगा,
सारा मयख़ाना मेरे नाम कर ।

()()()

रह गई जाम में, अँगड़ाइयाँ ले के शराब,
हमसे माँगी न गई, उन से पिलाई न गई ।

()()()

आब है, शराब है, और उम्मीद उनके आने की,
और क्या वज़ह चाहिए, ज़श्न मनाने की ।

इन बयानों से आप समझ ही गए होंगे कि इस तफ़्सीर में ज़िक्र होगा उस अज़ीम–तरीन शख़्सियत का, जिसके बिना, पीने वाले मैख़ाना तसव्वुरर ही नहीं करते ।

'मैख़ाने की मस्ती के मस्ताने हज़ारों हैं' पर तफ़्सीर जब अपने इख़्तदाम पर थी तो लगा कि कुछ अभी भी छूट रहा है, नज़र दौड़ाई तो 'साक़ी' दिख गया ।

हिन्दी फ़िल्म के गाने का एक मिसरा याद आ गया जो गोया

कुछ इस तरह था कि–

‘हमें तो साक़ी से वास्ता है, सुराही बदले या जाम बदले,
तेरे दीवाने कभी न बदलें, चाहे सारा निज़ाम बदले ।’

और जब **अमीर देहलवी** साहब को यह कहते सुना कि–

शराब उनकी आँखों से ढलती रहेगी,
मेरी तिश्नगी भी मचलती रहेगी ।

और इसके इसके बाद तो यह भी सुनने में आया कि कोई कह रहा है कि–

मय पिला कर आपका क्या जाएगा,
जाएगा ईमान जिसका जाएगा ।
क़त्ल की जब उसने दी धमकी मुझे,
कह दिया मैंने भी, देखा जाएगा ।

तो–

बस फिर क्या था, क़लम अपने आप चल पड़ी, और मज़ा यह कि, लिखना शुरू किया तो उन्हीं बुज़ुर्गवार रुबाइगो जनाब **उमर ख़ैयाम** साहब की हुंकार से कि जिनके कलाम से ही ‘मैख़ाने की मस्ती के मस्ताने हज़ारों हैं’ का आग़ाज़ हुआ था–

देती है अज़ल किसको, अमाँ अय साक़ी,
भर मेरा जाम जल्दी से, हाँ अय साक़ी ।

अमूमन साक़ी लफ़्ज़ सुनते ही फ़ौरी तौर पर एक ज़नाना तस्वीर ज़ेहन में कौंधने लगती है । पर वास्तविकता यह नहीं है, साक़ी वह जो, मैख़ाने में पीने वालों को शराब परोसे, लिहाज़ा इस मायने के मुताबिक़ ‘साक़ी’ कोई मर्द भी हो सकता है, इस लिहाज़ से आज के परिपेक्ष में बार वालायें भी साक़ी की श्रेणी में रखी जा सकती हैं । एकांत में माशूक़ा भी साक़ी के फ़रायज़ अंज़ाम दे सकती है।

जनाब **अमीर मीनाई** साहब ने क्या ख़ूब कहा है–
ज़ुदा है दुख़्तर–ए–रज नाम हर सोहबत में साक़ी,
परी है मयकशों में, हूर है परहेज़गारों में ।

अरे अरे ये सदा कहाँ से आ रही है ?–
गुलाबी गुलाबी सी आँखें तुम्हारी, गुलाबी गुलाबी सा यौवन तुम्हारा,
गुलाबी गुलाबी सा हर अंग तेरा, गुलाबी गुलाबी सा दामन तुम्हारा।
निगाहें गुलाबी, अदाएँ गुलाबी, करती है तू जो वो बातें गुलाबी,
समाँ है गुलाबी, फ़िज़ा है गुलाबी, तेरे साथ गुज़रें वो रातें गुलाबी।
गुलाबी गुलाबी से ये गाल तेरे, गुलाबी ये सीने की धड़कन तुम्हारी,
बहारें गुलाबी, नज़ारे गुलाबी, गुलाबी ये पायल की रुनझुन तुम्हारी।
गुलाबी गुलाबी से ये होंठ तेरे, गुलाबी गुलाबी है चाहत तुम्हारी,
गुलाबी है महफ़िल, गुलाबी है मंज़िल, गुलाबी मिले जिसको राहत तुम्हारी।

तो गोया शैख़ साहब हैं, हुज़ूर आप और मैख़ाने में, और ये क्या गुलाबी, गुलाबी की रट लगा रखी है? क्या कहा हुज़ूर? गुज़ारिश है, मेरे आक़ा आपको गुज़ारिश करने की ज़रूरत नहीं है, आपकी ज़ानिब से मैं ही इस तफ़्सीर के पढ़ने वालों से दरख़ास्त कर लेता हूँ । दरख़ास्त ही क्यों, बाक़ायदे मुनादी ही पिटवा देता हूँ –

'क़दरदान, मेहरबान, बाअदब, बामुलाहिज़ा होशियार, इस तफ़्सीर के पढ़ने वालों को जनाब शैख़ साहब की ज़ानिब से ताक़ीद की जाती है कि इस तफ़्सीर में जहाँ जहाँ साक़ी लफ़्ज आए, वहाँ वे साक़ी में सिर्फ़ एक ज़नाना शख़्सियत, एक कमसिन, नाजुक वदन, इठलाती, इतराती, बलखाती, आँखों से जाम पिलाती ख़ूबसूरती का ही इंतख़ाब करें । क्योंकि इल्मे–मय पर लिखने वालों की, 'साक़ी' से मुराद कुछ इसी तरह की बला से रही है, उन्होंने सिर्फ़ और सिर्फ़ ज़नाना खूबसूरती का ही 'साक़ी के' रूप में तसव्वुर किया है।

अपनी इस तज़्वीज का आपको यक़ीन दिलाता हूँ 'वो' मशहूर ग़ज़ल सुना कर जिसमें शायर कहता है कि–

ए हुस्ने-लालाफ़ाम ज़रा आँख तो मिला,
खाली पड़े हैं जाम ज़रा आँख तो मिला ।
कहते हैं आँख-आँख से मिलना है बंदगी,
दुनिया के छोड़ काम ज़रा आँख तो मिला ।
हैं राहे-कहकशाँ में अज़ल से खड़े हुये,
साग़र तेरे गुलाम ज़रा आँख तो मिला ।
साक़ी तुझे भी चाहिए इक ज़ख़्मे-तिश्नगी,
कितने पड़े हैं काम ज़रा आँख तो मिला ।
क्या वो न आज आएँगे तारों के साथ साथ,
तन्हाइयों की शाम ज़रा आँख तो मिला ।
साक़ी मुझे भी चाहिए एक जामे-आरज़ू,
कितने लगेंगे दाम ज़रा आँख तो मिला ।

साक़ी का जाहोजलाल ऐसा कि पहले तो तलबगार इल्तज़ा करता है, और जब उसके ऊपर साक़ी का निगाहे-क़रम हो जाता है तो वही ओह, आह करने लगता है-

निगाह की, और भी तक़लीफ़ बढ़ा दी तूने,
कुछ न बनाया तो आवाज़ सुना दी तूने ।

जनाब **हसरत मोहनी** साहब तो साक़ी की आश्नाई के सद्क़े, हर वली को मयख़्वार करने का दावा करने से भी गुरेज़ नहीं करते-

मस्ती के फिर आ गए जमाने,
आबाद हुये शराबख़ाने ।
रिंदों ने पिछाड़ कर पिलादी,
वाइज़ के न चल सके बहाने ।
कर दूँगा हर वली को मयख़्वार,
तौफ़ीक़ जो दी मुझे ख़ुदा ने ।
बेगाना-ए-मय किया है मुझको,
साक़ी की निगाह-ए-आश्ना ने ।

तौफ़ीक़ = योग्यता, वली = बुज़ुर्ग

जनाब **साहिर भोपाली** साहब भले ही तंज़िया लहज़े में कहें, बात तो ठीक ही है–

बस एक सज़्दा–ए–शुकराना, पा–ए–नाज़ुक पर,
ये मयकदा है, यहाँ पर ख़ुदा का नाम न ले ।

साक़ी की नज़रों पर तसद्दुक़ जनाब **राज इलाहाबादी** साहब के एतमाद की हद ही नहीं है–

और कुछ दिन ये दस्तूर–ए–मैख़ाना है,
तश्नाकामी के दिन गुजर जाएँगे ।
मेरे साक़ी को नज़रें उठाने तो दो,
जितने खाली हैं सब जाम भर जाएँगे ।

जनाब **अली अहमद ज़लीली** साहब का दर्दे–दिल भी वाज़िब है, ज़लीली साहब ही क्या कोई भी गैरतमंद यही कहेगा कि–

अब छलकते हुये साग़र, नहीं देखे जाते,
तौबा के बाद ये मंज़र, नहीं देखे जाते ।
हमने देखा है ज़माने का बदलना लेकिन,
उनके बदले हुये तेवर, नहीं देखे जाते ।
मस्त करके मुझे औरों को मुँह लगा साक़ी,
ये क़रम होश में रह कर, नहीं देखे जाते ।

साक़ी की बेशुमार अदाओं में से एक क़ातिल अदा का ज़िक्र जनाब **निज़ाम रायपुरी** साहब की जबानी–

देना वो उसका साग़र–ए–मय याद है 'निज़ाम',
मुँह फेरकर उधर को, इधर को बढ़ा के हाथ ।

देखिये तो मयकदा क्या हंगामाख़ेज़ हो उठा है, साक़ी के सिर्फ़ 'और' कहने भर से । बक़ौल जनाब **शक़ील बदायूँनी** साहब–

टकरा के टूट गए, शीशा– ओ – सागर,
मयख़्वारों के झुरमुट में, जो साक़ी ने कहा, और ?

पर **शक़ील** साहब को इस बात का बहुत अफ़सोस है कि इसी और, और की चलाचली में उनके हाथ से जाम टूट कर गिर गया, उन्होंने अफ़सोस ज़ाहिर भी किया–

जो तूने मुझे दिया, और मेरे हाथों से गिरा,
साक़िया मुझको उसी जाम पर रोना आया ।

जनाब **शक़ील** साहब साक़ी की छेड़छाड़ से तंग हो जाम गिरा बैठे, जिसे वे शायद भुला नहीं पा रहे हैं, वो इतने बेख़ुद हो गए हैं कि दूसरे उन्हें चेता रहे हैं–

कभी जाम लब से लगा दिया, कभी मुस्कुरा के हटा दिया,
तेरी छेड़छाड़ ये साक़िया, मेरी तश्नगी बढ़ा न दे ।
वो उठे हैं लेके ख़ुम–ओ–सुबू, अरे ओ शक़ील कहाँ है तू,
तेरा जाम लेने को बज़्म में, कोई और हाथ बढ़ा न दे ।

मोहतरम जनाब **अहमद फ़राज़** साहब अपने ही ख़ुसूशी अंदाज़ में साक़ी के रुतबे को बलंद करते हुये फ़र्माते हैं–

शिद्दत–ए–तिश्नगी में भी, ग़ैरत–ए–मयकशी रही,
उसने जो फेर ली नज़र, मैंने भी जाम रख दिया ।

बात वही है, पर कहने का अंदाज़ अलहदा है जनाब **याहिया जसंदवाला** साहब का –

मुझे मस्त अगर बना दे ये निगाह–ए–मस्त तेरी,
मेरा हाथ क्या, नज़र भी, कभी जाम तक न पहुंचे ।

मोहतरम जनाब **दर्शन** साहब का दर्शन भी कुछ इसी तरह का है–

दिल अपना मयकशी का तलबगार भी नहीं,
हाँ वो अगर पिलाएँ तो इन्कार भी नहीं ।
सूना पड़ा है देर से मयख़ाना–ए–वफ़ा,
साक़ी का ज़िक्र क्या, कोई मयख़्वार भी नहीं ।

जनाब **दर्शन** साहब भी जनाब **साग़र निज़ामी** साहब की इस बात की, कि *'यहाँ शराब से इंसान बनाए जाते हैं'* की ताईद करते हैं–

जाम–ओ–मीना मेरी नज़रों से हटा दे साक़ी,
ये जो आँखों से छलकती है पिला दे साक़ी ।
शोला–ए–इश्क़ से छलका दे मेरे शीशे को,
और बेताब को बेताब बना दे साक़ी ।
फिर कभी होश न आये तो कोई बात नहीं,
आज हम जितनी पियें, पिला दे साक़ी ।
जोश–ए–मस्ती में बगलगीर हों बिछुड़े हुये दिल,
आज इंसान को इंसान बना दे साक़ी ।
ज़िंदगी ख़्वाब–ए–मुसलसल के सिवा कुछ भी नहीं,
इसकी ताबीर तो 'दर्शन' को बता दे साक़ी ।

एक साहब तो साक़ी को समझाते हुये यह भी कहते हुए सुने गए–

शिकन न डाल जबीं पर अय साक़ी,
ये मुस्कुराती हुई चीज़ है मुस्कुरा के ही पिला ।

साक़ी की कुछ और खुसूसियतों में कई अदीबों ने वक़्त– बेवक़्त इज़ाफ़े किए हैं, जिनमें ख़ूबसूरती के साथ अदा, चालाकी, अपना–परायापन, रिझाने का फ़न, और जरूरत पड़ने पर रिंद की आग़ोश में आने का हुनर भी साक़ी में होना चाहिए । ऊपर पहले ही कह दिया गया है कि **'ये मुस्कुराती हुई चीज़ है मुस्कुरा के ही पिला'** लिहाज़ा एक साहब साक़ी को चेताते हैं–

कोई मुँह चूम लेगा, तुम्हारी इस नहीं पर,
शिकन रह जाएगी, यूं ही ज़बीं पर ।

कहने का मतलब साक़ी को रिंदों की मुराद पूरी करने में किसी किस्म की कोताही नहीं बर्तनी चाहिए । ग़रज़ यह कि साक़ी अगर ऊपर बताए गए मेयार, और मशविरों पर ख़रा उतरती है तो उसके

चाहने वालों, उस पर फ़िदा होने वालों की मैख़ाने में कोई कमी नहीं है वैसे तो लिखने वालों ने साक़ी के नख़ से शिख़ तक का वर्णन किया है, पर रिंदों को सबसे ज़ियादा साक़ी की आँखों से ख़ुमार छाने लगता है । वे साक़ी की आँखों पर अपनी जान तक क़ुर्बान करने को बैठे रहते हैं, जनाब **फ़ैज़ रतलामी** साहब भी साक़ी के ऐसे ही क़द्रदानों में से एक हैं–

तेरी मस्ती भरी आँखों पर मेरी ज़ाँ क़ुर्बान,
अय मुझे ज़हर भरा जाम पिलाने वाले ।

देखें मोहतरम **ग़ुलाम रब्बानी ताबाँ** साहब ने साक़ी का मर्तबा किस क़दर बलंद किया है–

किसी के हाथ में जाम–ए–शराब आया है,
के माहताब तह–ए–आफ़ताब आया है ।
तेरी निगाह की हल्की सी एक जुम्बिश से,
ज़हान–ए–शौक़ में क्या इंक़िलाब आया है ।

शायद जनाब **रोशन साहब** भी यही कहना चाहते हैं–

सुबह पीते हैं, शाम पीते हैं,
तेरी आँखों के जाम पीते हैं ।
ज़िंदगी एक नशा है ख़ुद रोशन,
हम इसी के नशे में जीते हैं ।

इन साहब को पक्का यक़ीं है–

आज ये जाम में नशा कैसा,
उसने होठों से छू लिया होगा ।

कुछ लोग इस फ़िराक़ में रहते हैं कि कब दो चंचल नैना मिलें और कब वो अपनी आँखें सेकें । जनाब **सनाउल्लाह 'फ़िराक़'** साहब ने साक़ी की आँखों की तुलना 'साग़र' (शराब रखने का पात्र) से कुछ इस तरह की–

दिल थामता कि चश्म पै, करता तेरे निगाह,
साग़र को देखता कि मैं, शीशा सम्हालता ?

जनाब **अब्दुल हमीद अदम** साहब की आतिशी बयानबाजी इस सिलसिले में क़ाबिल-ए-ग़ौर है-
मगर उसको फ़रेब-ए-नर्गिस-ए-मस्ताना आता है,
उलटती है सफ़ें, गर्दिश में जब पैमाना आता है ।

अब आप **शमीम शाह्बादी** साहब को क्या कहेंगे ?
आँख को जाम समझ बैठा था अनजाने में,
साक़िया होश कहाँ था तेरे दीवाने में ।

मरहूम बादशाह जनाब **बहादुरशाह जफ़र** को तो साक़ी के बग़ैर हवा, पानी, फूल, चमन और न ही चमन की हरियाली भाती है-
न हो जब तू ही ये साक़ी, भला फिर क्या करे कोई,
हवा को, अब्र को, गुल को, चमन को, सहने-बुस्तां को ?

पता नहीं मरहूम बादशाह सलामत जनाब **बहादुरशाह जफ़र** ने ये शेर अपनी जवानी के दौर में लिखा था या फिर अल्लाह को प्यारे होते वक़्त, ख़ैर जो भी हो साक़ी का मर्तबा ज़रूर बढ़ा गए-
हमें जन्नत में भी मैख़ाना, याद आएगा अय साक़ी,
कि है जो ऐश वो हमको, मयस्सर था तो इस ज़हाँ था ।

बादशाह सलामत के नक़्शे-पा पर चलते हुये जनाब **दाग़ देहल. वी** साहब भी कुछ ऐसा ही महसूस करते हैं-
ये तो माना हमने हाँ, शीशे में है बाक़ी शराब,
कुछ मज़ा देती नहीं है, हमको बे-साक़ी शराब ।

मोहतरम जनाब **असग़र गोंडवी** साहब की फ़ितरत-ए-रिंदाना उनके इन अश्‌आर में जिस क़दर बयाँ हुई है क़ाबिले दाद है-

हम एक बार जलवा-ए-जानाना देखते,
फिर काबा देखते न सनमख़ाना देखते ।
गिरना वो झूम-झूम के रिंदान-ए-मस्त का,
फिर पा-ए-खुम पे सज़दा-ए-मस्ताना देखते ।
रिंदों को सिर्फ़ नश्शा-ए-बेरंग से ग़रज़,
ये शीशा देखते हैं, न पैमाना देखते ।

लोगों को ये क्या हो गया है, जो देखो साक़ी के बग़ैर मज़े ही नहीं ले पाता है शराब के । अब जनाब **'आजाद'** साहब की भी सुनें-

मय हो, मीना हो और साक़ी हो पिलाने के लिए,
तब मज़ा देती है, ये काली घाटा बरसात की ।

जनाब **रियाज़ ख़ैराबादी** साहब जब भी कुछ कहते हैं, नाप तौल के कहते हैं, जिनका कि उन्हें रियाज़ भी अच्छा है-

अपनी जूठी जो कभी, मुझको पिला देता है,
लबे-साग़र, लबे-साक़ी का मज़ा देता है ।

जनाब **साजन पेशावरी** साहब तो साक़ी की आँखों के इतने मुरीद हैं कि उन्हें उनसे शराब बरसती नज़र आती है-

क्या बताएं क्या शय बरसती है,
चश्मे-साक़ी से मय बरसती है ।

क्या हो गया इन शायरों को ? जो देखो वही साक़ी की आँखों का दीवाना बना हुआ है । पारसा होकर भी जनाब **पारसा क़ौसर** साहब भी उलझ गए हैं-

तूने कभी जो अपनी नज़र से पिलाई थी,
उतरा नहीं है उसका अभी तक ख़ुमार देख ।

हद हो गई, जनाब **नरेश कुमार शाद** साहब भी वही राग अलाप

रहे हैं–

तूने डाली न मयफ़िशाँ नजरें,
वरना शबनम शराब हो जाती ।
मयफ़िशां = मादक

अब जनाब **सलाम सिद्दकी** साहब को भी क्यों नाराज़ किया जाये? उनका भी चश्मे–साक़ी के नाम सलाम लेते चलें–

तेरी नज़रों से जब मिलें नज़रें,
शैख़ भी मयगुसार हो जाए ।

जनाब **हीरालाल 'फ़लक़'** का तो मानना है कि अगरचे मैख़ाने आबाद हैं तो सिर्फ साक़ी की आँखों की बदौलत, वरना–

निगाहों ने तेरी साक़ी किए आबाद मैख़ाने,
अगर घर बैठ कर पीते तो मैख़ाने कहाँ जाते ?

वे यहीं नहीं रुकते हैं –

बहार आई जो बनकर सुरूरे–मयख़ाना,
मैं चश्मे यार से उलझा, घटा से पैमाना ।

'उनसे नज़र मिली कि मेरे होश उड़ गए', ये मेरी नहीं जनाब **हसरत मोहानी** साहब की हसरत है–

मस्त मैं तो हो गया, तेरी निगाह से साक़ी,
अब नहीं मुझमें रहा और पैमाने का होश ।

लो करलो बात, **हसरत मोहानी** साहब की हाँ में हाँ जनाब **असग़र रिज़वी** साहब भी मिला रहे हैं–

आँखें तेरी बरसाती चली जाएँ मए–नाब,
दिल एक शराबी सा बहकता चला जाए ।
मए–नाब = ख़ालिस मदिरा

शफ़ीक़ साहब को सुनिएगा ?

वो मयगुसार थी साक़ी निगाहे मस्त तेरी,
तमाम बज़्म में जामे-शराब हो के फिरीं ।

मशहूर नग़्मानिगार जनाब **शक़ील बदायूँनी** साहब साक़ी की बेरुख़ी का शुक्रिया अदा करते हुये कहते हैं-

तुम्हारी बेरुख़ी ने लाज रख ली बादाख़ाने की,
तुम आँखों से पिला देते तो पैमाने कहाँ जाते ?

ऐसा नहीं है कि साक़ी को अपने रुतबे-मर्तबे का एहसास न हो, है और बख़ूबी है, तभी तो मोहतरमा **कमल कुमारी 'कमल'** साहिबा साक़ी की जगह अपने को रख कर फ़र्माती हैं-

तड़प के तोड़ दी तौबा तमाम आलम ने,
मेरी नज़र से जो तेरी नज़र ने जाम लिया ।

मोहतरम **वफ़ा मेरठी** के कलाम का मज़ा लें-

हाय वो मस्ती भरी साक़ी की आँख,
हाय वो जलवे छलकते जाम के ।

साजन पेशावरी साहब की नज़्म का एक टुकड़ा है कि *'तुम देखने की चीज़ हो तो देखता हूँ मैं,* मुझको सज़ाये मौत जो मेरा कुसूर हो', शायद जनाब **शाद अज़ीमाबादी** भी इससे मुतास्सिर दिखते हैं, पर इसके कुछ उलट, यहाँ साक़ी उनपर नज़रों के वार, बार-बार कर रही है-

देखा किए वो मस्त निगाहों से बार बार,
जब तक शराब आए, कई दौर हो गए ।

'क्या ज़ौक़ है, क्या शौक़ है सौ मर्तबा देखूँ, फिर भी कहूँ जलवाये-जानाना नहीं देखा ।' जनाब **दाग़ देहलवी** साहब के इस शेर से क्या समझा जाए? जनाब **हीरालाल फ़लक़** साहब समझाने

की कोशिश करते हुये कहते हैं–

मैं दीदाए–साक़ी को 'फ़लक़' चूमता पहरों,
रखता न अगर साग़रो–मीना मेरे आगे ।

जनाब **अंदाज़ जयपुरी** साहब का अंदाज़े–ज़ौक़ भी देखें–

ज़िंदगी को मेरी जीने का मज़ा मिल जाए,
मस्त आँखों से जो पीने का मज़ा मिल जाए ।

सब जानते हैं मैख़ाने में मयख़्वार, मय से ज़ियादा साक़ी की मयनाज़ आँखों के दीवाने होते हैं, साक़ी ने एक तिरछी नज़र क्या डाली जनाब **हफ़ीज़ बनारसी** साहब, अपने आप को दुनिया का सबसे ख़ुशनसीब इंसान मानने लगे । उन्हें महसूस होने लगा कि मैख़ाने में हर मयनोश उन्हें रस्क़ की नज़र से देखने लगा है–

रस्क़ से देखे न क्यूँ, याराने मैख़ाना मुझे,
सबको जामे–मय मिला, आँखों का पैमाना मुझे ।

जनाब **डा० ऋषिपाल धीमान 'ऋषि'** साहब, जनाब **हफ़ीज़ बनारसी** साहब की इस बयानबाजी से तुनक कर साक़ी से शिकायत करते हुये फ़र्माते हैं–

साक़ी ! छके हुओं को पिलाता है तू शराब,
थोड़ी शराब दे दे तलबगार के लिए ।

और उन्हें जब लगा कि साक़ी ने उनके शिकवे को नज़र अंदाज़ कर दिया तो थोड़ा नरम होते हुये, साक़ी को ख़ुश करने के लिहाज़ से दो मीठे बोल भी उन्होंने कहे –

औक़ात अपनी है या साक़ी करम तुम्हारा,
आते ही बस हमारे साग़र बदल गए हैं ।

अरे! ये साक़ी को क्या हो गया ? **धीमान** साहब की बात पर ध्यान क्यों नहीं देता, जब कि डा० साहब उसे ख़ुश करने के लिए

कोई कसर ही नहीं छोड़ रहे हैं–

मैं शराबी सा लगता रहा इसलिए,
मेरी आँखों में बनके नशा वो रहे ।

और

कोई पयाम न चाहा तेरे पयाम के बाद,
न जाम कोई पिया हमने तेरे जाम के बाद ।

मेरे ख़्याल से अब तो हद हो गई, लगता है साक़ी की शामत आने वाली है–

बेरुख़ी से जाम देंगे तो नशा क्या आएगा,
जाम देते वक़्त थोड़ा मुस्कुराया कीजिये ।

मैंने कहा था न कि साक़ी की शामत आने वाली है । जब उनकी इस तंज़बयानी पर भी साक़ी ने ग़ौर न फ़र्माया तो डा० साहब फटकार लगाते हुये उठकर चल दिये–

तुम रक्खो साले–नौ की ये बोतल सँभाल के,
मैं तो सुरूर में हूँ अभी पिछले साल के ।

साक़ी की बेरुख़ी से नाराज़ **डा० धीमान** साहब ही वाहिद शख़्स नहीं हैं, हुज़ूर **कैफ़ भोपाली** की ख़ुद्दारी भी देखें–

जब हमें मस्ज़िद में जाना पड़ा है,
राह में इक मैख़ाना पड़ा है ।
हम न पिएँगे भीक की साक़ी,
ले ये तेरा पैमाना पड़ा है ।

जनाब **जिगर मुरादाबादी** साहब का तख़ल्लुस यूं ही जिगर नहीं था, सचमुच बड़ा जिगर था उनका–

साक़ी पर इल्ज़ाम न आये,
चाहे तुझ तक जाम न आये,
मयख़ाने में सब ही तो आये,
लेकिन 'जिगर' का नाम न आये ।

इसका मतलब यह बिल्कुल भी नहीं है कि **जिगर** साहब साक़ी के जाहो-जलाल के चलते अपनी हैसियत ही भूल जाएँ, यानि कि साक़ी के पहलू से बंध कर रह जाएँ-

इक जगह बैठ कर पी लूँ मेरा दस्तूर नहीं
मयकदा तंग बना लूँ मुझे मंज़ूर नहीं ।

इतना ही नहीं, आप फ़र्माते हैं-

कहाँ से बढ़कर पहुँचे हैं, कहाँ तक इल्म-ओ-फ़न साक़ी,
मगर आसूदा इनसाँ का, न तन साक़ी न मन साक़ी,
सलामत तू, तेरा मयख़ाना, तेरी अंजुमन साक़ी,
मुझे करनी है अब कुछ ख़िदमत-ए-दार-ओ-रसन साक़ी,
अभी नाकिस है मयआर-ए-जुनु, तन्ज़ीम-ए-मयख़ाना,
अभी नामोतबर है तेरे मस्तों का चलन साक़ी ।

आसूदा = तृप्त , दार-ओ-रसन = घरबार, वतन,
नाक़िस = नामुकम्मल, तनज़ीम = प्रबंध, व्यवस्था,
नामोतबर = जिसका विश्वास न किया जा सके ।

जिगर साहब का कहना कि 'इक जगह बैठ कर पी लूँ मेरा दस्तूर नहीं' से मोहतरम जनाब **असग़र गोंडवी 'अदम'** साहब भी सिर्फ़ इत्तेफ़ाक ही नहीं रखते बल्कि दो क़दम और आगे बढ़ कर रिंदों के औसान को बलंद करते हुये फ़र्माते हैं-

न ये शीशा, न ये साग़र, न ये पैमाना बने,
जान-ए-मैख़ाना तेरी नर्गिसे मस्ताना बने ।
रिंद जो ज़र्फ़ उठा लें, वही साग़र बन जाये,
जिस जगह बैठ कर पी लें, वहीं मैख़ाना बने ।

हद हो गई जनाब **नसीम भरतपुरी** साहब ये तो-

कल दाम भीख मांग के दे देंगे साक़िया,
पिलवा दे बहार-ए-साक़ी-ए-कौसर उधार आज ।

मैख़ाने की बात हो और साक़ी का नाम न आए ये नहीं हो सकता, इतना तो सुना था, पर यहाँ तो मोहतरम जनाब **इक़बाल साहब** ने नासेह को भी बीच में घसीट लिया–

कोई समझाये कि रंग क्या है मैख़ाने का,
आँख साक़ी की उठे, नाम हो पैमाने का ।
चश्मे साक़ी मुझे हर गम पे याद आती है,
रास्ता भूल न जाऊँ कहीं मैख़ाने का ।
अब तो हर शाम गुज़रती है इसी कूचे में,
ये नतीज़ा हुआ, नासेह तेरे समझाने का ।

पहले ही कहा था कि मयख़्वार मैख़ाने में मय कम और साक़ी की मैकश आँखों की वज़ह से ज़ियादा आते हैं, तभी तो जनाब **जिगर श्योपुरी** साहब के मुंह से निकल ही गया–

साक़िया खोल दे तू मैकदे के दरवाज़े,
हमको इन मस्त निगाहों से नशा करना है ।

जनाब **मुख़्तार कैसरी** साहब ने कितने मुख़्तिलफ़ अल्फ़ाज़ में साक़ी के मदमाते नैनों की तारीफ़ की है–

तेरी नज़र की गुलाबी छन रही है शराब,
छुपा हुआ इनमें कोई फ़ित्ना दिखाई देता है ।
फ़ित्ना = दंगा, गड़बड़

कुलवंत जानी साहब तो जाम को भी ठोकर लगाने को तैयार बैठे है अगर–

साक़ी जो निगाहों से पिलाना शुरू करे,
ठोकर लगा दूँ जाम में रक्खी शराब को ।

जनाब **शाद अज़ीमाबादी** साहब ने एक बहुत बड़ी बात कह दी जो साक़ी के रुतबे को आसमानी ऊँचाइयों पर पहुँचाने के लिए काफ़ी है–

आख़िरी जाम में क्या बात थी ऐसी साक़ी,
हो गया पी के जो ख़ामोश, वो ख़ामोश रहा ।

जनाब **परवाज़ नसीर** साहब ने आज मैख़ाने का जो ख़ाका खींचा है वह बड़ा ही अजीब है–

तेरी निगाह ने क्या कह दिया ख़ुदा जाने,
उलट के रख दिये बादाकशों ने पैमाने ।

दो–चार बातें जनाब **पन्नालाल 'नूर'** साहब की भी सुनी जाएँ । पहले तो उनकी साक़ी को उम्रदराज़ होने की दुआ–

साक़िया तूने मय पिलाई है,
मस्त नज़रों की, तेरी उम्रदराज़ ।

इसके बाद वे किसी रिंद को फटकार लगाते हुये दिखाई देते हैं–

माँगता क्यों शराब साक़ी से,
उसकी आँखों में क्या ख़ुमार न था ?

नूर साहब ख़ुद भी क़ायल हैं–

मैं डूब–डूब गया हूँ ख़ुमार में जब से,
तुम्हारी आँखों में रंगे शराब देखा है ।

जनाब **शाद अज़ीमाबादी** के इस बयान पर कि 'दिले मुज़्तर (दिले मुज़्तर=व्याकुल मन) से पूछ ये रौनके बज़्म, मैं ख़ुद आया नहीं लाया गया हूँ,' की ही तर्ज पर **नूर** साहब फ़र्माते हैं–

कहाँ बाक़ी रही थी ताब, मैख़ाने तक आने की,
मगर साक़ी की नज़रों का, सहारा लेके आया हूँ ।

'मुझको नहीं कुबूल दो आलम की वुसअतें, कूए में मेरे यार की दो गज़ ज़मीं रहे ।' की तर्ज़ पर जनाब **बहज़ाद लखनवी** साहब भी अपने हमशहर जनाब बहादुरशाह जफ़र सा ही मिजाज़ रखते

हैं–

औरों को अता करदे, ये साग़रो–मीना,
आँखों से पिला साक़ी, गर तुझको पिलाना है ।

अब जनाब **जिगर मुरादाबादी** साहब पर तो कोई शक़ भी नहीं कर सकता, आप फ़र्माते हैं–

पीता बग़ैर इज़्न के, कब थी मेरी मज़ाल,
दर–पर्दा–चश्मे–यार की, शह पा के पी गया ।
इज़्न = इजाजत

जिगर साहब यहीं नहीं रुके, आगे फ़र्माते हैं–

साक़ी की हर निगाह पे, बल खा के पी गया,
लहरों से खेलता हुआ, लहरा के पी गया ।

जिगर साहब अहसानफ़रामोश भी नहीं हैं, साक़ी का शुक्रिया अदा करते हुये वे कहते हैं–

आज तो कर दिया साक़ी ने, मुझे मस्त–अलस्त,
डाल कर ख़ास, निगाहें मेरे पैमाने पर ।

अच्छा ऐसा नहीं है कि **जिगर** साहब सिर्फ़ फ़लसफ़ाना या संजी. दा क़िस्म की ही बातें करते हैं, उनका मज़ाक़ भी बड़े ऊँचे मेयार का होता है–

पीकर शराब साक़ी से इठला रहा हूँ मैं,
बहका नहीं हूँ, साक़ी को बहका रहा हूँ मैं ।

एक और जिगर वाले हैं, और नाम है जनाब **जिगर श्योपुरी** जिन्होंने कभी कहा था **'साक़िया खोल दे तूँ मैकदे के दरवाज़े, हमको इन मस्त निगाहों से नशा करना है ।'** वही आज इतने असमंज़स में हैं कि उन्हें अपने आप को ख़ुदा के हवाले करते हुये कहना पड़ा–

इधर है साग़रो–मीना, उधर नज़रों के पैमाने,
हमारा दिल किधर जाता है, अब ये तो ख़ुदा जाने ।

उनके अगले फ़र्मान से आप समझ जाएंगे कि उनका दिल किधर गया होगा–

रिंद है तो सीख ले आँखों से पीने का शऊर,
सिर्फ़ दो ही घंटे में हो जाएगा पूरा ख़ुमार ।

इसी शहर से एक और हैं, **'जनाब शाकिर श्योपुरी'** साहब जिनको इत्मीनान है कि साक़ी उन्हें काफ़ी तवज़्जो देती है–

बुरा लगता है हर मैकश को मेरा मैकदे आना,
मगर साक़ी की नज़रों में, मेरा सम्मान काफ़ी है ।

कई बार अंदाज़ा बिल्कुल ठीक निकलता है, जनाब अंदाज़ जयपुरी साहब का अंदाज़ा भी सच साबित हो सकता है, क्योंकि अब तक हमने साक़ी की आँखों के बारे में जो कुछ भी सुना है उससे तो यही लगता है–

जिसको तू एक नज़र देख ले तेरा हो जाये,
पी ले दो घूँट तो, सवेरा हो जाये ।

'सोज़' साहब तो ख़ुल्लमख़ुल्ला कहते फिर रहे हैं–

पीकर किसी की मस्त निगाहों से जामे–मय,
मैं होश में न आऊँ, अगर मेरा बस चले ।

'जिस किसी को भी साक़ी ने आँखों से जाम दिया, ख़ुदा से पहले उसने साक़ी का ही नाम लिया ।' जनाब **अजीज़ वारसी** साहब इसी बात को अपने तरीक़े से समझाने की कोशिश करते हुये फ़र्माते हैं–

जिसको आँखों से मए–इश्क़ पिलादी तूने,
उसपे दिन रात बरसती हुई रहमत देखी ।

यह कैसी उलटबयानी है जनाब **अदम साहब**, आपने बिल्कुल भी कुसूर (कुफ़्र का काम) नहीं किया, बल्कि आपने तो साक़ी की आँखों को सज़दा करके उस परवरदिगार के पास अपना सलाम स्पीड पोस्ट से भेजा है, ज़ल्द से जल्द पहुंचेगा–

हल्का हल्का शुरूर है साक़ी,
बात कोई जरूर है साक़ी ।
तेरी आँखों को कर दिया सज़दा,
मेरा पहला कुसूर है साक़ी ।
तेरे रुख़ पर ये परेशां जुल्फ़ें,
इस अंधेरे में नूर है साक़ी ।
तेरी आँखें किसी को क्या देंगी,
अपना अपना शुरूर है साक़ी ।
पीने वालों को भी नहीं मालूम,
मयकदा कितनी दूर है साक़ी ।

आसमान की तरफ़ पैर उठा कर लोग अगर इस ग़फ़लत में सोएँ कि फ़लक़ उनके पैरों पर थमा है तो यह सिवाय उनकी नादानी के और कुछ भी नहीं है । अब शराब को अगरचे लगता है कि मयफ़रोशों को नशा उसकी बदौलत होता है तो यह मज़ाक़ से ज़ियादा कुछ और नहीं । *'नशा शराब में होता तो नाचती बोतल'* की तर्ज़ पर जनाब **उरूज़ ज़ैदी** साहब यह बात वाज़ेह कर देना चाहते हैं कि –

मुझे यक़ीन है, चश्मे-मस्त का सदक़ा,
शराब को ये है दावा, सुरूर है मुझसे ।

अब इतना बेदार होने की जरूरत नहीं है जनाब **बेदार देहल-वी** साहब, आपको आँखों से खिची भी मिलेगी, बिस्मिल्लाह तो कीजिये जनाब–

औरों को पिला जाम से, पर मुझको तो अय साक़ी,
इक घूँट बस उसका कि, जो आँखों से खिची हो ।

कल तक जो क़तील शिफ़ाई साहब यह कहते फिरते थे कि–
तश्ना नज़रें मिलीं शोख़ नज़रों से जब,
मय बरसने लगी जाम भरने लगे ।

वही **क़तील** साहब आज भी मारे–मारे साक़ी को ढूँढ़ते हुये सदा दे रहे हैं–
मैकदे बंद हुये ढूँढ़ रहा हूँ तुझको,
तूँ कहाँ है मुझको आँखों से पिलाने वाले ?

इनके ही हमनाम जनाब **क़तील बर्नी** साहब भी चश्मे–साक़ी के क़ाइल हैं, कहते हैं–
हट गई नज़रों से नज़रें, मैकदा सा लुट गया,
मिल गई नज़रों से नज़रें, मैकशी होने लगी ।

जनाब **मीर तक़ी मीर** साहब ने कभी कहा था, *'उसकी तर्ज़े–निगाह मत पूछो,* जी ही जाने है, आह मत पूछो ।' मतलब ये कि यदि **मीर** साहब की महबूबा की तर्ज़े–निगाह का ख़ुमार उन पर इस क़दर तारी है तो जनाब **वासिल निस्वानी** साहब का हाल क्या होता होगा ?
साक़िया अक्स पड़ा है जो तेरी आँखों का,
और दो जाम नज़र आते हैं पैमाने में ।
असगर गोंडवी साहब का भरोसा तो देखें, उन्हें साक़ी की निगाह की जलवागिरी का एहसास है जिसकी बिना पर उन्हें साग़रो–मीना फ़रेब जैसे लगते हैं–
साक़ी तेरी निगाह को पहचानता हूँ मैं,
मुझको फ़रेबे–साग़रो–मीना न चाहिए ।

हजरत **श्री टी.एन.सिन्हा** का ऑबजरवेशन भी कमाल का है–
साक़ी तेरी निगाह के सब मुंतज़िर रहे,
जामो–सुबू व साग़रो मीना तमाम रात ।

असर लखनवी साहब ने कहा है– *'देखो न आँख भर कर किसी की तरफ़ कभी, तुमको ख़बर नहीं है,* जो तुम्हारी नज़र में है ।' इस बात का इमकान उन के हमशहर जनाब **मख़दूम लखनवी** साहब को भी है–

निगाहे–हुस्न में क़हर था क्या ख़ुदा जाने,
गिरा है छूट कर बे–इख़्तियार पैमाना ।

जनाब **क़मर मुरादाबादी** को इस बात का कोई गिला नहीं कि उनका जाम आधा ही भरा है, बस उनकी तो इतनी ही इल्तज़ा है कि उन पर साक़ी का चश्मे–क़रम यानि कि नज़रे–इनायत बनी रहे–

साक़िया तंज़ न कर, चश्मे–क़रम रहने दे,
मेरे साग़र में अगर कम है तो कम रहने दे ।

साक़ी की निगाह का जलवा तो देखें, मैकश तो मैकश, जाम भी आपस में टकराने लगे । अगर मेरी बात पर यक़ीन न हो तो जनाब **इक़बाल सफ़ीपुरी** साहब से ही सुन लीजिये–

वो नज़र उठ गई जब सरे मयकदा,
ख़ुद व ख़ुद जाम से जाम टकरा गए ।

अरे–अरे यह क्या जनाब **मस्तान बीकानेरी** साहब क्यों ताव खा रहे हैं?

अब तो पीनी है हमें साक़ी की चश्मे–मस्त से,
भाड़ में बोतल गई, भट्टी में पैमाने गए ।

कुलवंतसिंह जानी साहब ने साक़ी की आँखों की क्या ख़ूब मिसाल दी है, कहते हैं–

ज़िंदा हूँ इसी मय के सहारे मैं साक़िया,
पलकों से ढाँपते हो जामे शराब क्यों ?

यहाँ जनाब **अख़्तर अंसारी** साहब को भी सुनना पड़ेगा जो जनाब

जानी साहब के उलट साक़ी को मश्वरा देते हैं–

रख आड़ में पलकों के छलकते साग़र,
अय दोस्त दुनिया न शराबी हो जाए ।

अगरचे साक़ी आँखों से पिलाये तो जनाब **ज़की काकोरवी** साहब को जामे-मय की दरकार ही नहीं, लीजिये उन्हीं से सुनिए–

मुझे क्या वास्ता जामे-सुबू से,
तेरी आँखों के पैमाने बहुत हैं ।

जनाब **शाद अज़ीमाबादी** साहब का हाल भी सुनेंगे आप?–

निगाहेनाज़ से साक़ी का देखना मुझको,
फिर अपने हाथ में साग़र उठा के रह जाना ।

यही हाल जनाब **ज़फ़र गोरख़पुरी** साहब का हुआ–

तेरी निगाह से ऐसी शराब पी मैंने,
कि फिर न होश का दावा किया कभी मैंने ।

अनवर 'ताबाँ' साहब तो उस जाम से ही घबराते हैं जिसमें साक़ी की आँखों का सुरूर न हो–

जिसमें शामिल न हो साक़ी की निगाह का सुरूर,
सच तो ये है कि हम उस जाम से घबराते हैं ।

जब साक़ी की मस्त मस्त आँखों पर इतने क़सीदे सुन चुके हैं तो एक बार फिर से जनाब **ख़ुमार बाराबंकवी साहब** को सुनते चलें जो फ़र्माते हैं कि शराब को हराम कहने वालो ! साक़ी की आँख से जो मय छलकती है वो हराम हो ही नहीं सकती–

दिखा के मद भरी आँख कहा साक़ी ने,
हराम कहते हैं जिसको ये वो शराब नहीं ।

जनाब **अनवर मिर्ज़ापुरी** साहब की साकी से इल्तज़ा कि -
मैं नज़र से पी रहा हूँ, ये समाँ बदल न जाए,
न झुकाओ तुम निगाहें, कहीं रात ढल न जाए ।
अभी रात कुछ है बाक़ी, न उठा निक़ाब साक़ी,
तेरा रिंद गिरते गिरते, कहीं फिर सँभल न जाए ।

अब थोड़ा आपके इ़ल्म और शौक़ के मेयार को परख़ने की बारी है, क्योंकि अब वह सुनाया जाएगा जिसके बाद कुछ और सुनने का दिल ही न करे । तो नोश फ़र्मायें पीर-ए-शायरी मोहतरम जनाब **मिर्ज़ा ग़ालिब** की साक़ी के नाम ताक़ीद-
आज तो ऐसी पिला साक़ी, के दिल झूम उठे,
आज मैकश न रहे यूँ, नज़रअंदाज़ कोई ।

()()()

साक़ीगरी की शर्म करूँ आज, वरना हम,
हर शब पिया ही करते हैं, मय जिस क़दर मिले ।

()()()

पिला दे ओक से साक़ी, जो मुझसे नफ़रत है,
पियाला गर नहीं देता, न दे, शराब तो दे ।

()()()

गो हाथ में जुंबिश नहीं, आँखों में तो है,
रहने दे अभी साग़रो-मीना मेरे आगे ।

()()()

मैं और बज़्मे मय से, तश्नाकाम जाऊँ,
गर मैंने की थी तौबा, साक़ी को क्या हुआ था ?

आज पता नहीं, मार्के की बातें करने वाले मोहतरम जनाब **'अदम'** साहब क्यों ऐसी बातें कर रहे हैं–

साक़ी शराब ला, कि तबीयत उदास है,
मुतरिब रबाब उठा, कि तबीयत उदास है ।
शायद तेरे लबों की चटक से, हो जी बहाल,
अय दोस्त मुस्कुरा, कि तबीयत उदास है ।
तौबा तो कर चुका हूँ, मगर फिर भी अय 'अदम',
थोड़ा सा जह्र ला कि तबीयत उदास है ।

और ये भी कि –

साक़ी मुझे शराब की तोहमत नहीं पसंद,
मुझको तेरी निगाह का इल्ज़ाम चाहिए ।

जनाब **नोमान शौक़** साहब का ज़ौक़–ए–शराब देखें–

शीशे के ज़िस्म जैसा गुलाबी बना था जाम,
ऐसा लगा, उतर गया कोई शराब में ।

जनाब **साजन पेशावरी** साहब की शिकायत भी ग़ैरवाज़िब नहीं है–

हम को एक जाम ग़ैर को साग़र,
साक़ी, तेरा उसूल कोई है कि नहीं ?

लिफ़ाफ़ा देख कर मज़मून भाँप लेने वाले **परवाज़ जालंधरी** साहब का अंदाज़ शायद ठीक ही हो –

मय बरसती है, फ़ज़ाओं में नशा तारी है,
मेरे साक़ी ने कहीं जाम उछाले होंगे ।

रिंदों के दिल की बात जनाब **रामेश्वरबख़्श सिंह एजाज़** साहब से सुनिए–

छक के साक़ी को दुआ देते है, पीने वाले,
या इलाही रहे आबाद पिलाने वाला ।

जब तक आपके बयान को नहीं पढ़ा था तब तक आपके इस्मेशरीफ़ की तरफ नज़र ही नहीं गई, पर जब पढ़ चुके तो तब जबरन मानना पड़ा कि यह सिवाय जनाब **'वाहिद प्रेमी'** के अलावा और कौन कह सकता है?

जब भी लुत्फ़े साक़ी में फ़र्क़ आते देखा है,
बढ़ के तोड़ डाले हैं साग़रो–सुबू हमने ।

ये हुई न रईसों वाली बात और वो भी रामपुरी चाकू की नोक पर जो जनाब **'रईस रामपुरी'** साहब जैसे रहीस ही कह सकते थे–

जामे–मय छीन लिया करते हैं, हम अय साक़ी,
पस्त हिम्मत ग़िला–ए–तश्नालबी करते हैं ।

जनाब **हीरालाल फ़लक़** साहब को कहीं गलतफ़हमी तो नहीं हो रही है–

ख़ुश्क़ होठों से किया, तश्नालबी का एहसास,
मुझको साक़ी ने दिया जाम पे जाम आते ही ।

मोहतरम **नाहीद बिलक़ीस** को तो चारों तरफ़, हर शय में 'वो' ही 'वो' नज़र आते हैं–

हमने देखी है तेरी मस्त जवानी की अदा,
हँसते फूलों में, छलकते हुये पैमानों में ।

अल्लाह ख़ैर करे, जनाब **रियाज़ ख़ैराबादी** साहब आज न जाने क्या गुल खिलाने वाले हैं । आज वे पूरे मूड में नजर आते हैं–

छलकाएं लाओ भरके गुलाबी शराब की,
तस्वीर खीचें आज तुम्हारे शबाब की ।

जनाब **अख़्तर शीरानी** साहब! आपको ऐसा क्यों लगने लगा है कि आप यह कहने पर मज़बूर हुये कि –

उन रसभरी आँखों में हया खेल रही है,
दो ज़हर के प्यालों में क़ज़ा खेल रही है ।

एहसान दानिश साहब आपका कोई जुर्म नहीं है बल्कि आपका एहसान है जो आपकी नज़र–ए–क़रम साक़ी पर पड़ी –

कौन सा जुर्म है, क्या सितम होगा,
आँख गर उठ गई, आप ही की तरफ़ ।

कोई यूँ ही तो **मीर** नहीं हो जाता बिना इतने मार्के की बात किए, जो मोहतरम **मीर तक़ी मीर** साहब ने कही–

'मीर' उन नीमबाज़ आँखों में,
सारी मस्ती शराब की सी है ।

()()()

देखीं थीं एक रोज़ तेरी मस्त आँखड़ियाँ,
अँगड़ाइयाँ सी लेते हैं, अब इक ख़ुमार में ।

ये भी एक ही अंदाज़ है तारीफ़ करने का, आप ख़ुद मानेंगे अगरचे आप जनाब **फ़िराक़ गोरख़पुरी** साहब का कहा हुआ जानेंगे–

कुछ नहीं कहती वो निगाह मगर,
बात पहुँचती है मगर कहाँ से कहाँ ?

कहीं आपके होश न उड़ जाएँ, लिहाज़ा अब आप सब्र के साथ जनाब **'सब्र मख़्दूमपुरी'** को सुनें–

मस्ती निगाहे नाज़ की, कैफ़े–शबाब में,
जैसे कोई शबाब मिला दे शराब में ।

अगर आप फ़लसफ़ाना अंदाज की बयानबाज़ी पसंद करते हैं तो

मोहतरम **'मिर्ज़ा दाग़'** से रूबरू होइए, गो कि वो रंज़ूर हैं, साक़ी की किसी ख़ास हरक़त पर –

कैसा नज़ारा, किसका इशारा, कहाँ की बात,
सब कुछ है, और कुछ नहीं नीची निगाह में ।

()()()

इलाही क्यों नहीं आती, क़यामत माज़रा क्या है,
हमारे सामने पहलू में, वो ग़ैरों के बैठे हैं ।

जनाब **अहसानुल्लाह 'बयान'** की फिक्र भी वाज़िब है, बाबजूद इसके कि साक़ी की नम आँखों से उनकी रुसवाई हो रही है, फिर भी मज़बूर हैं उसी की बज़्म में आने के लिए –

रुसवा अभी से करती है ए चश्मे–तर मुझे,
आना है उसकी बज़्म में, बारे–दीगर मुझे ।

आसी उल्दनी साहब का तो अजब हाल हो रहा साक़ी की निगाहे–नाज़ से, कभी तोला तो कभी माशा । वो भी क्या करें, साक़ी है भी तो शैतान की बच्ची, तरह तरह कि हिक़मतें आज़माती है उन पर । ये मैं नहीं कह रहा बल्कि उन्हीं का कहा हुआ आप को बता रहा हूँ–

एक हालत पर न रहने पाई दिल की हसरतें,
तुमने जब देखा नए अंदाज़ से देखा मुझको ।

जिगर मुरदाबादी साहब तो लगता है आज क़सम खाकर आए हैं कि साक़ी को हर हाल में ख़ुश करके ही छोड़ेंगे । वे साक़ी के नख़–शिख़, मख़मूर आँखों और उसके दिल–जिगर की तारीफ़ में क़सीदे करने पर ही उतारू हुये जान पड़ते है । और तारीफ़ भी ऐसी कि कोई भी बिना देखे ही साक़ी पर सौ जान से फ़िदा हो जाए, जो मैख़्वार न हो वह भी मैख़्वार हो जाए । गर मेरी बात

का यक़ीन न हो, तो आप ख़ुद ही देख–सुन लें–

और भी मेरे लिए, आफ़त का सामाँ हो गईं,
हाय वो मख़मूर आँखें, जब पशेमाँ हो गईं ।

()()()

इन लबों की ज़ाँ–नवाज़ी देखना,
मुँह से बोल उठने को है जामे–शराब ।

()()()

शीशे से न रख मतलब, ये साक़िए–मैख़ाना,
इन मस्त निग़ाहों से भर दे मेरा पैमाना ।

()()()

यूँ तो साक़ी हर तरह की, तेरे मैख़ाने में है,
वो थोड़ी सी दे, जो इन आँखों के पैमाने में है ।

()()()

जितनी भी आज पी सकूँ, उज़्र न कर पिलाये जा,
मस्त नज़र का वास्ता, मस्त नज़र बनाए जा ।

()()()

इक मए–बेनाम जो इस दिल के पैमाने में है,
वो किसी शीशे में है, साक़ी न मैख़ाने में है ।

अपनी बात को रखने का हर एक का अपना अंदाज़ होता है

पर सुनने वाले उसी बयान को ज़ियादा पसंद करते हैं जिसे कुछ ख़ास अदा से कहा गया हो और इस लिहाज़ से जनाब **अहमद फ़राज़** साहब औरों से बीस ही बैठते हैं । साक़ी की तारीफ़ करने की उनकी अदा देखें–

ये किन नज़रों से तुमने आज देखा,
कि तेरा देखना, देखा न जाए ।

मिर्ज़ा सौदा साहब को ख़ूब पता है साक़ी की जादू–निगाहियों का जलवा, उनसे अब और बरदास्त नहीं हो रहा, लिहाज़ा उन्होंने फ़र्माया–

कैफ़ियते चश्म उसकी, मुझे याद है 'सौदा',
साग़र को मेरे हाथ से लेना कि मैं चला ।

डा० इक़बाल साहब का साक़ी का नाम लिये बग़ैर साक़ी को दिया गया उलाहना तवज़्जो देने लायक है–

सौ सौ उम्मीदें बँधती हैं इक इक निगाह पर,
मुझको न ऐसे प्यार से, देखा करे कोई ।

यग़ाना चंग़ेजी साहब साक़ी को ताक़ीद करते है–

दीवानावार दौड़ के कोई लिपट न जाए,
आँखों में आँखें डाल कर देखा न कीजिये ।

मरहूम जनाब **दाग़ देहलवी** साहब अच्छी तरह से जानते थे कि हर कोई तारीफ़ का भूखा होता है, औरत जात तो ख़ास तौर से, इसलिए साक़ी की चाहत पाने की एवज़ में वे भी यह कहने से नहीं चूके–

रह गए लाखों कलेजा थाम कर,
आँख जिस ज़ानिब तुम्हारी उठ गई ।

जनाब **हसरत मोहानी** साहब साक़ी की जादू भरी निगाहों पर

तसद्दुक़ होते हुये दूसरे हम-पियाला, हम-निवाला मयनोशों को चिढ़ा रहे है-

देखो तो चश्मे-यार की जादू-निगाहियाँ,
हर इक को है गुमाँ कि मुख़ातिब हमीं रहे ।

अफ़सर मेरठी साहब साक़ी को नसीहत देते हुये फ़र्माते हैं-
बज़्म में इन मद भरी आँखों को गर्दिश दे मगर,
इसका अंदाज़ा तो करले, किसको कितना होश है ।

हुज़ूर **हफ़ीज़ जालंधरी** साहब की परेशानी तो देखिये, वो मिन्नतें कर रहे हैं कि-

नासेह को बुलाओ मेरा ईमान सँभाले,
फिर देख लिया उसने शरारत की नज़र से ।

ज्यों-ज्यों रात खत्म होने को आने लगी, **बिस्मिल अज़ीमाबादी** साहब को साक़ी से बिछुड़ने का ग़म सताने लगा है-

सारी उम्मीद रही जाती है,
हाय फिर सुबह हुई जाती है ।

मस्त-मौला **चकबस्त** साहब आज कुछ रंज़ूर से दिखते हैं, वज़ह भी है इसकी, उन्हीं से सुनिए-

एक साग़र भी इनायत न हुआ याद रहे,
साक़िया जाते हैं, महफ़िल तेरी आबाद रहे ।

जनाब **शाद अज़ीमाबादी** साहब ने तो साक़ी का रुत्बा इतना बढ़ा दिया है कि-

लड़खड़ा के जो गिरा, पाँव पै साक़ी के गिरा,
अपनी मस्ती के तसद्दुक़, मुझे ये होश रहा ।

बरायमेहरवानी साक़ी जनाब **शाद अज़ीमाबादी** साहब तो बार-बार

तसद्दुक़ होने की रट लगा बैठे है, कभी साक़ी पर तो कभी जाम पर–

ज़मीं पै जाम को रख दे, ज़रा ठहर साक़ी,
मैं इस पै हो लूँ तसद्दुक़, तो फिर उठा के पियूँ ।
तसद्दुक़ = न्योछावर, फ़िदा

जनाब **नज़ीर अकबराबादी** का गुस्सा साक़ी के न होने से सातवें आसमान पर पहुँच गया है–

दूर से आए थे, सुन कर मैख़ाने को हम,
बस तरसते ही चले, अफ़सोस पैमाने को हम ।
मय भी है मीना भी है, साग़र भी है साक़ी नहीं,
जी में आता है लगा दें आग मैख़ाने को हम ।

मोहतरम **अहसान मारहरवी** साहब का ताना भी सुनें, आप फ़र्माते हैं–

साक़ी–ओ–वाइज़ में ज़िद है, बादाकश चक्कर में है,
तौबा लब पर और लब डूबा हुआ साग़र में है ।

साक़ी के बग़ैर **शक़ील बदायूँनी** साहब को तो ज़िंदगी जीना बेहयाई लग रही है–

न साक़ी, न मुतरिब, न साग़र, न मीना,
गवारा हो भी क्यों, बेहया बन के जीना ।

इतना ही नहीं आप इतने बेचैन हो उठे हैं कि खुल के कहते फिर रहे हैं–

साक़ी नज़र से पिन्हाँ, शीशे तही तही से,
बाज़ आए हम तो ऐसी, बेकैफ़ ज़िंदगी से ।

साक़ी के जलवों का बयान करते हुये **बदयूँनी** साहब फ़र्माते हैं–

मुझको साक़ी ने रुख़सत किया मैख़ाने से,

खुद मए-नाब छलकने लगी पैमाने से ।
पिन्हाँ = छिपा हुआ, तही तही = खाली-खाली

ग़ज़लगोई को नया लिबास पहनाने वाले मोहतरम जनाब **दुष्यंत कुमार** साहब फ़र्माते हैं-
हुज़ूर आरिज़ो रुख़सार क्या तमाम बदन,
मेरी सुनो तो मुज़स्सम गुलाब हो जाए ।
उठाके फेक दो खिड़की से साग़रो मीना,
ये तिश्नगी जो तुम्हें दस्तयाब हो जाए ।
मुजस्सम = साकार, मूर्तिमान, दस्तयाब = हाथ में आना, प्राप्त होना

और ये भी कि -
ये थोड़ी-थोड़ी मै न दे, कलाई मोड़-मोड़कर,
भला हो तेरा साक़िया, पिला दे ख़ुम निचोड़ कर ।

ख़ालिद मीनाई साहब का एतमाद भी देखते ही बनता है-
लड़खड़ाने पै न जा तिश्ना लबों के साक़ी,
जाम दे जाम, पिएंगे तो सँभल जाएंगे ।

हफ़ीज़ बनारसी साहब का गुमान तो देखिये, फूले नहीं समा रहे-
रश्क़ से देखे न क्यों, याराने-मैख़ाना मुझे,
सबको जामे-मय मिला, आँखों का पैमाना मुझे ।

तासीर साहब शायद पीने के बाद कोई गुस्ताख़ी कर बैठे, जो शायद साक़ी को नागवार लगी, और उस गुस्ताख़ी की तासीर उन्हें बख़ूबी मालूम है, तभी तो भले ही दबी ज़ुबान से ही सही बयान कर ही दी -
लबालब जाम फिर साक़ी ने, वापिस ले लिया मुझसे,
न जाने क्या कहा मैंने, न जाने क्या हुआ मुझसे ।
और इसका उन्हें रंज़ भी है, क्योंकि 'वो' साक़ी कोई ऐसी वैसी

साक़ी न थी, वह भी दिलदार थी जिसे अपने फ़रायज़ का इल्म भी अच्छी तरह से था, वे अफ़सोस करते हुये फ़र्माते हैं–

अज़ब निगाह से साक़ी ने बंदोबस्त किया,
शराब बाद को दी, पहले सब को मस्त किया ।

मोहतरम जनाब **हफ़ीज़ जौनपुरी** साहब की, आखिर वक़्त में जब मुलाक़ात साक़ी से हुई तो उनके मुँह से बेसाख़्ता निकल गया–

दिया जब जाम–ए–मय साक़ी ने भर के,
तो पछताए बहुत हम तौबा कर के ।
लिपट जाओ गले से वक़्त–ए–आखिर,
कि फिर जीता नहीं है कोई मर के ।

जनाब **दिलीप ताहिर** साहब को अंदेशा है कि ख़ुदा न ख़्वास्ता कहीं ज़ाहिद भी साक़ी के चाहने वालों में सुमार न हो, लिहाज़ा वे साक़ी को ताक़ीद करते हुये फ़र्माते हैं–

दस्तूर इबादत का दुनिया से निराला हो,
इक हाथ में माला हो, इक हाथ में पियाला हो ।
पूजेंगे सलीक़े से, अंदाज़ मगर अपना,
हो यादे–ख़ुदा दिल में, साक़ी ने सँभाला हो ।
मस्ती भी, तक़द्दुस भी, एक साथ चलें दोनों,
इक सिम्त हो मयख़ाना, इक सिम्त शिवाला हो ।
मस्ज़िद की तरफ़ से, तू जाना न कभी साक़ी,
ज़ाहिद भी कहीं तेरा न चाहने वाला हो ।
तक़द्दुस = पाकीज़गी, पवित्रता

अब इन साहब को क्या हुआ जो साक़ी को दुआएं देते थकते ही नहीं हैं और शराब–शराब की रट लगाए चले जा रहे हैं–

ज़वां है रात साक़िया, शराब ला–शराब ला,
ज़रा सी प्यास तो बुझा, शराब ला–शराब ला ।
तेरे शबाब पर सदा, क़रम रहे बहार का,

तुझे लगे मेरी दुआ, शराब ला–शराब ला ।
यहाँ कोई न जी सका, न जी सकेगा होश में,
मिटा दे नाम होश का, शराब ला–शराब ला ।
तेरा बड़ा ही शुक्रिया, पिलाएजा, पिलाएजा,
न ज़िक्र कर हिसाब का, शराब ला–शराब ला ।

अल्लाह ख़ैर, करे जनाब **रियाज़ ख़ैराबादी** साहब तो लगता है जैसे सारी हदें पार कर जाने पर उतारू हैं–

पीली हमने शराब पी ली,
थी आग, मिसाले–आब पी ली ।
मुँह चूम ले कोई इस अदा पर,
सरका के जरा निक़ाब पी ली ।

जनाब **शादाब लाहौरी** साहब की आरज़ू भी सुनिए–

देने वाले मुझे मौज़ों की रवानी देदे,
फिर से इक बार मुझे मेरी जवानी देदे ।
अब्र हो, जाम हो, साक़ी हो मेरे पहलू में,
कोई तो शाम मुझे ऐसी सुहानी देदे ।
नशा आ जाये मुझे तेरी जवानी की क़सम,
तू अगर जाम में भर के मुझे पानी देदे ।

मोहतरम **अदम** साहब की बेख़ुदी हद से बढ़ गई है, आप फ़र्माते हैं–

साक़ी के गेसुओं की हवा खा रहा हूँ मैं,
और इस हवा के साथ उड़ा जा रहा हूँ मैं ।
अय बहिश्त–ए–ख़्याल नतीज़ा तेरे सुपुर्द,
साग़र को क़ायनात से टकरा रहा हूँ मैं ।
दैर–ओ–हरम की गर्द बहुत दूर रह गई,
शायद मयकदे के क़रीब आ रहा हूँ मैं ।
जाता हूँ बज़्म–ए–हश्र में इस बेदिली के साथ,

जैसे किसी रक़ीब के घर जा रहा हूँ मैं ।

बहिश्त-ए-ख़याल = दोज़ख़ का खयाल

जनाब **अनवर मिर्ज़ापुरी** साहब कभी तो साक़ी को समझाते हुये कहते हैं कि-

रुख़ से पर्दा उठा दे जरा साक़िया,
अभी रंगे महफ़िल बदल जाएगा ।
है जो बेहोश वो होश में आएगा,
गिरने वाला है जो वो सँभल जाएगा ।

तो कभी कहते है कि-

मैं नज़र से पी रहा हूँ, ये समाँ बदल न जाए,
न झुकाओ तुम निगाहें, कहीं रात ढल न जाए ।
अभी रात कुछ है बाक़ी, न उठा नक़ाब साक़ी,
तेरा रिंद गिरते गिरते, कहीं फिर सँभल न जाए ।

होता है, ऐसा ही होता है, मयनाब आँखों की जलवागिरी होती ही ऐसी है, अक़्ल-ओ-दिल कुछ कहती है, और क़लम कुछ लिख जाती है-

अब इन्हीं साहब को देख लीजिये, इन्हें इतना तो पता है कि मैख़ाने बंद हो चुके है, और यह भी कि उन्हें किसी शख़्स ने यह भी सिखाया है कि आँखें कैसे बंद करते है, पर यह याद नहीं आ रहा कि किसने-

आज बस इक याद ने तड़पा दिया,
दिल ने ये किस मोड़ पर ला दिया ।
मैख़ाने तो कब के बंद हो चुके,
फिर जाम किस मयनोश ने पिला दिया ।

अब जो कुछ आपको सुना रहा हूँ वो जनाब **सलीम ग़िलानी** साहब का ग़िला नहीं बल्कि हरदिल अज़ीज़ साक़ी के मर्तबे को

बढ़ाने वाले बोल हैं–

फूल ही फूल खिल उट्ठे हैं मेरे पैमाने में,
आप क्या आए बहार आ गई मैख़ाने में ।

ये हुई न बात, कम से कम कोई तो मिला जो साक़ी को उसकी औक़ात बताने की जुर्अत कर सका । जनाब **परवीन शाकिर** साहब की साक़ी के नाम तोहमत–

तेरे पैमाने में गर्दिश नहीं बाक़ी साक़ी,
और तेरी बज़्म से कोई उठा चाहता है ।

जनाब **शमीम जयपुरी** साहब का फ़लसफ़ाना अंदाज़ भी देखें–

नशा दोनों में है साक़ी, मुझे ग़म दे के शराब,
मय भी पी जाती है, आँसू भी पिये जाते हैं ।

जनाब **रामकिशोर 'गौतम'** भी साक़ी के बिना मयकशी का लुत्फ़ नहीं ले पाते । **गौतम** साहब के टूटे हुये दिल की सदा कुछ इस तरह बयाँ हुई–

मुझसे कभी था रौशन, तेरा शराबख़ाना,
हम रोज़ बैठते थे, महफ़िल सज़ा–सज़ा के ।
तेरी गली में साक़ी, मेरा मकान भी है,
किस ओर जा रहा है, चेहरा छिपा–छिपा के ।
साक़ी पिला दे इतनी, फिर होश लौट आए,
मैं होश खो चुका हूँ, अरमाँ जला–जला के ।

जनाब **क़ादिर** साहब का साक़ी के सामने सफ़ाई देते हुये गिड़गिड़ाना सुनना चाहेंगे आप ?–

साक़िया छोड़ न ख़ाली मेरे पैमाने को,
इतनी ही दे दे कि हो जाए क़सम खाने को ।
साक़िया हद्द–ए–सितम, इसमें बिगड़ना कैसा,
कोई पैमान को तोड़े, कोई पैमाने को ।

कुछ तो हो जाती है कम, शिद्दत-ए-तौबा में कमी,
पी के हम तोड़ दिया करते हैं पैमाने को ।
जितने मुँह उतनी ही बातें हैं, बढ़े क्यों न जुनूं ,
सब ने दीवाना बना रक्खा है दीवाने को ।
पैमान = प्रतिज्ञा, वादा

ऐसा नहीं है कि साक़ी को उसकी अज़मत और जलवों का भान ही न हो, वो सब जानती है, तभी तो मोहतरमा **रेहाना शाहीन** फ़र्माती हैं-

मैं तो किसी हसीन की आँखों का ख़्वाब हूँ,
मुझको न दे शराब कि मैं ख़ुद शराब हूँ ।
जलवा मुझे मिला है तो हुस्ने नज़र तुझे,
मेरा जवाब तू है, मैं तेरा जवाब हूँ ।

जाते जाते **ज़लील मानिकपुरी** साहब का अहद भी सुनते चलें-
बात न साक़ी की, टाली जाएगी,
करके तौबा तोड़ डाली जाएगी ।

इतना सहा है तो थोड़ा और हौसला दिखाएँ और बरदास्त कर लें, कि-
उनकी आँखों से न शायद हमको फ़ुर्सत मिल सके,
वरना अपने हाथ में, शीशा भी है पैमाना भी ।

()()()

देवे साक़ी जिसे एक जाम, वो दावे से कहे,
आज जो पास है मेरे, नहीं जमशेद के पास ।

()()()
कभी ख़ुश भी किया है दिल किसी रिंदे-शराबी का,

भिड़ा दे मुँह से मुँह साक़ी, हमारा और गुलाबी का ।

()()()

बड़ी हसीन है ज़ुल्फ़ों की शाम, पी लीजिये,
हमारे हाथ से दो-चार जाम, पी लीजिये ।
पिलाये जब कोई माशूक़ अपने, हाथों से,
शराब फिर नहीं रहती हराम, पी लीजिये ।

()()()

रूह किस मस्त की प्यासी गई मैख़ाने से,
मय उड़ी जाती है साक़ी तेरे पैमाने से ।

()()()

टूटी नहीं है साक़िया रिंदों के हाथ से,
ख़ुद ही नशे में चूर थी बोतल शराब की ।

()()()

पास रहता है, दूर रहता है,
कोई दिल में ज़रूर रहता है ।
जब से देखा है उनकी आँखों को,
हल्का हल्का सुरूर रहता है ।

()()()

सारा ज़हान मस्त, जहाँ का निज़ाम मस्त,
दिन मस्त, रात मस्त, सहर मस्त, शाम मस्त ।
दिल मस्त, शीशा मस्त, सुबू मस्त, जाम मस्त,
है तेरी चश्म-ए-मस्त से, हर ख़ासो-आम मस्त ।

()()()

तुझको दरियादिली की क़सम साक़िया,
मुस्तक़िल दौर पर दौर चलता रहे ।
रौनक़-ए-मयकदा यूँ ही बढ़ती रहे,
एक गिरता रहे, इक सँभलता रहे ।

()()()

होंठों पै आज आप ही का नाम आ गया,
प्यासे के हाथ जैसे कोई जाम आ गया ।
बहके क़दम तो गिर पड़े बाहों में आपकी,
पीना मेरा भी आज मेरे काम आ गया ।

()()()

साक़ी तेरी महफ़िल में हम जाम उछालेंगे,
जब काबे में जाएँगे, ज़मज़म से नहा लेंगे ।
()()()

फिर चला रिंद सूए मयख़ाना,
हाथ में जाम है न पैमाना ।
है वो साक़ी से लौ लगाए हुये,
जज़्बा रखता है दिल में रिंदाना ।

()()()
डाली है नज़र जब से, एक नशा तारी है,
क्या कोई परी साक़ी, शीशे में उतारी है ?

()()()

उनकी आँखों ने इब्तदा की थी,
मेरी दीवानगी ज़वाबी है ।
मयगुसारी अगर नहीं ज़ायज़,
आपकी आँख क्यों शराबी है ?

()()()

हुस्न है, रंग है, शोख़ी है, अदा है उसमें,
एक ही जाम मगर कितनी शराबों वाला ?

()()()

जब पिलाया जाम तूने साक़िया बस प्यार से,
मुद्दतों के बाद मेरा होश में आना हुआ ।
()()()

तुझे क़सम है साक़िया, शराब ला, शराब दे,
उठा सुबू, नज़र मिला, शराब ला, शराब दे ।
हरेक ऐसा जाम हो, कि जिस पै तेरा नाम हो,
तू अपने नाम की पिला, शराब ला, शराब दे ।
न दिल में कोई ग़म रहे, न मेरी आँख नम रहे,
हरेक दर्द को मिटा, शराब ला, शराब दे ।
बहुत हसीन रात है, तेरा हसीन साथ है,
नशे में कुछ नशा मिला, शराब ला, शराब दे ।

()()()
ये कैसी मौज़–ए–क़रम थी निगाहे साक़ी में,
के उसके बाद से तूफ़ानी तिश्नगी कम है ।

()()()

साक़ी ख़ुमार–ए–इश्क़ के बाइस हूँ बेक़रार,
वरना नशा तो था ही नहीं, तेरी शराब में ।

()()()

जलता हूँ हिज्र–ए–शाहिद–ओ–याद–ए–शराब में,
शौक़–ए–शबाब ने मुझे, डाला अज़ाब में ।
हिज्र–ए–शाहिद = माशूका के वियोग में, शाहिद = गवाह
()()()

ढल गया आफ़ताब अय साक़ी,
ला पिला दे शराब अय साक़ी ।
या सुराही लगा मेरे मुँह से,
या उलट दे नक़ाब अय साक़ी ।
मयकदा छोड़ कर कहाँ जाऊँ,
है ज़माना ख़राब अय साक़ी ।
जाम भर दे गुनाहगारों के,
ये भी है इक सवाब अय साक़ी ।
आज पीने दे, और पीने दे,
कल करेंगे हिसाब अय साक़ी ।
()()()

है किसी की याद से मन्सूब मेरी बादाकशी,
उठाऊँ जाम तो आती हैं हिचकियाँ मुझको ।

()()()

मुझको मयख़ाना पिला दे साक़ी,
मुझको दर्दों का सिला दे साक़ी ।
फ़िक्र मेरी है तो फिर मेरे लिए,
जाम में जह्र मिला दे साक़ी ।

()()()

साक़ी दर–ए–मयख़ाना ज़रा खोलके रखना,
शायद मुझे जन्नत की हवा रास न आए ।

()()()

छलक के कम न हो, ऐसी कोई शराब नहीं,
निगाह–ए–राना–नर्ग़िसे, तेरा ज़वाब नहीं ।
निगाह–ए–राना–नर्ग़िसे = खूबसूरत आँख की चितवन

()()()

साक़ी गई बहार, रही दिल में ये हवस,
तू मिन्नतों से जाम दे, और मैं कहूँ कि बस ।

()()()

जब तक शबाब–ए–इश्क़, मुकम्मल शबाब है,
पानी भी है शराब, हवा भी शराब है ।

()()()

दुख़्तर–ए–अंगूर ने उठा रक्खी है आफ़त सर पर,
ये तो अच्छा हुआ, अंगूर को बेटा न हुआ ।
()()()

उनकी आँखों से मस्ती छलकती रही,
होश उड़ते रहे, दौर चलता रहा ।
आज मयख़ाना यूँ ही छलकता रहा,
रिंद पीते रहे, शैख़ जलता रहा ।

()()()

सुए मयकदा न जाते तो कुछ और बात होती,
वो निगाह से पिलाते तो कुछ और बात होती ।

()()()

सब समझता हूँ, तेरी इश्वाकारी साक़ी,
काम करती है नजऱ, नाम हो पैमाने का ।
इश्वाकारी = हाव–भाव दिखाने की अदा

()()()

हमसे 'अदम' छुपाओ तो ख़ुद न पी सको,
रक़्खा है तुमने कुछ तो सुराही में डाल कर ।

()()()

साक़ी तेरे अहसास–ए–नदामत से हूँ मज़बूर,
वरना मुझे अब आरज़ू–ए–जाम नहीं है ।
नदामत = पश्चाताप

()()()

मयकदा लाख करें, बंद जमाने वाले,
शहर में कम नहीं, आँखों से पिलाने वाले ।

()()()

ये इख़्तिलाफ़ न हो मयकशों में अय साक़ी,
नई शराब अगर साग़र–ए–कुहन में रहे ।
इख़्तिलाफ = मतभेद, कुहन = पुराने

()()()

मैं नज़र से पी रहा था, कि दिल ने बद्दुआ दी,
तेरा हाथ ज़िंदगी भर कभी, जाम तक न पहुंचे ।

()()()

हमें तो अय 'ज़मील' अपनी जात ही निगल गई,
वो और थे जो साक़ी–ओ–शराब में मगन रहे ।

()()()

साक़ी मेरे खुलूस की शिद्दत तो देखना,
फिर आ गया हूँ, गर्दिश–ए–दौराँ को टाल कर ।
गर्दिश–ए–दौराँ = दुनियावी चक्कर

()()()
तौबा–तौबा शैख़जी, तौबा का है किसको ख़्याल,
जब वो खुद कहदे कि पी, थोड़ी सी पी मेरे लिए ।

()()()

छलकायें लाओ भर के गुलाबी शराब की,
तश्वीर खींचें आज तुम्हारे शबाब की ।

()()()

मैं उसकी आँखों की छलकी शराब पीता हूँ,
गरीब होके भी, मँहगी शराब पीता हूँ ।

()()()

नज़र नज़र से मिला कर शराब पीते हैं,
हम उनको पास बिठा कर शराब पीते हैं ।

()()()

'असग़र' ग़ज़ल में चाहिए वो मौज़-ए-ज़िंदगी,
जो हुस्न है बुतों में, जो मस्ती शराब में ।

()()()

मय से ग़रज़ निशात है, किस रूसियाह को,
थोड़ी सी बेख़ुदी मुझे, दिन-रात चाहिए ।
निशात = सुख

()()()
टूटे तेरी निगाह से, गर दिल हबाब का,
पानी भी फिर पिये तू, मज़ा हो शराब का ।
हबाब = बुलबुला

()()()

अफ़लाक़ से खींची जाती है, सीनों में छुपाई जाती है,
तौहीद की मय साग़र से नहीं, आँखों से पिलाई जाती है ।
अफ़लाक़ = आसमान, तौहीद = ईश्वर को मानना

()()()

कल के लिए न आज कर, ख़िस्सत शराब में,
ये सूए–जान–ए–साक़िया कौसर के बाब में ।
ख़िस्सत = कंजूसी, कमी, बाब = दरवाजा,

()()()

गुज़री मदाम उसकी जवानी–ए–मस्त में
पीर–ए–मुग़ाँ भी तड़फा, कोई पीर मर्द था ।

()()()

बात भी तेरी रक़्खी है साक़ी, रस्क को भी न रुसवा करेंगे,
जाम दे या न दे आज हमको, तेरे दर पै सवेरा करेंगे ।

()()()

शराब आज तो साक़ी न रख छुपाए हुये,
के दूर दूर से हैं, बादाख़्वार आए हुये ।

()()()
तसव्वुर अर्स पर है, और सर है पा–ए–साक़ी पै,
ग़रज़ कुछ और धुन में, इस घड़ी मयख़्वार बैठे हैं ।

()()()

मैख़ाने से तेरा कूचा, तेरे कूचे से मयख़ाना,
इसी में तमाम सारा, ये अपना सफ़र हुआ ।

()()()

गुलाब, ख़्वाब, दवा, ज़हर, जाम, क्या क्या है,
मैं आ गया हूँ, बता इंतज़ाम क्या क्या है ?

()()()

न छेड़ अय हमनशीं कैफ़ियत-ए-कहवा के अफ़साने,
शराब-ए-बेख़ुदी के मुझको साग़र याद आते हैं ।

()()()

छू लेने दो नाज़ुक होठों को, कुछ और नहीं हैं, जाम हैं ये,
कुदरत ने जो हमको बख़्शा है, वो सबसे हसीं ईनाम है ये ।

()()()

जब चला है साक़ी तो ये दौर-ए-जाम चले,
दिन चले, रात चले, सुबह चले, शाम चले ।
कारोबार-ए-मैख़ाना तो बंद है आज,
तू नज़रों से पिलादे, तो मेरा काम चले ।

()()()

दिल-ए-पुरख़ून इस गुलाबी से,
उम्र भर हम रहे शराबी से ।
दिल-ए-पुरख़ून = रक्तरंजित दिल

()()()

फ़रेब–ए–साक़ी–ए–महफ़िल न पूछिए 'मज़रूह',
शराब एक है, बदले हुये हैं पैमाने ।

()()()

पी रहा हूँ आँखों–आँखों में शराब,
अब न शीशा है न कोई जाम है ।

()()()

बादाख़्वारों के दरमियाँ साक़ी, कुछ मसाइल उलझ गए होंगे,
जब तेरी ज़ुल्फ़ खुल गई होगी, सब यक़ीनन सुलझ गए होंगे ।

()()()

न ढूँढ़ कहाँ होगी मेरी मदहोशी की इंतहा,
साक़ी मुकम्मल है नशा, तेरे शबाब का ।

()()()

साक़ी तुझे क़सम है, जनाब–ए–अमीर की,
बहती फिरे शराब में क़श्ती फ़क़ीर की ।

()()()

तेरी निगाह ने क्या कह दिया ख़ुदा जाने,
उठा कर रख दिये, बादाकशों ने पैमाने ।

()()()
सिवाय अहले नज़र और कोई क्या जाने,
निगाहे यार सलामत, हज़ार मैख़ाने ।
न ग़म–ए–जाम दे रे अपने मस्तों को,
ग़िला नहीं जो गुरेज़ाँ हैं चंद पैमाने ।

()()()
ग़ैर लें महफ़िल में बोसे जाम के,
हम रहे यूँ तश्नालब पैगाम के ।

()()()

उसके पैमाने में कुछ और, मेरे पैमाने में कुछ और,
देखना साक़ी हो न जाए, मैख़ाने में कुछ और ।

()()()
कम नहीं शराब से, शोख़ियाँ शबाब की,
ये हवा, ये मस्तियाँ, ये अदा जनाब की ।

()()()
मैं तेरी मस्त निगाही का भरम रख लूँगा,
होश आया भी तो कह दूँगा मुझे होश नहीं ।

और आखिर में **ज़फ़र** साहब का बयान उन्हीं से–
ला पिला दे साक़िया पैमाना पैमाने के बाद,
बात मतलब की करूंगा, होश आ जाने के बाद ।
ज़िंदगी में दो ही लम्हें मुझ पै गुज़रे हैं कठिन,
इक तेरे आने से पहले, इक तेरे जाने के बाद ।
उठ चलो बस 'जफ़र' इस महफ़िल–ए–अग़्यार से,
वरना पीनी ही पड़ेगी, दौर चल जाने के बाद ।

इससे पहले कि आप से रुख़सत ली जाए, एक और क़व्वाली, किसी साक़ी के परिस्तार के मूँ से ही सुनिए, और समझिए कि बिलआख़िर हर मयनोश का कमोवेश शायद यही हश्र होता है, बरायमहरवानी सुन लीजिये जिससे अब मैं जो कहने जा रहा हूँ उसको मायने मिल जाएँ–

मेरे साक़िया, मेरे साक़िया, मुझे भूल जा, मुझे भूल जा ।
मेरे दिलरुबा, मेरे दिलरुबा, मुझे भूल जा, मुझे भूल जा ।
मेरे साक़िया, मुझे भूल जा, मुझे भूल जा
न वो दिल रहा, न वो उज़्री रहा, न वो दौरे एशो ख़ुशी रहा,
न वो रब्त–ज़ब्त दिल ही रहा, न वो आज तिश्नालबी रहा,
न वो ज़ौक़–ए–बादाकशी रहा, न वो श़ग्ल–ए शीशागरी रहा ।
मैं अलम नवाज़ हूँ आजकल, मैं शिक़स्ता साज़ हूँ आजकल,
मैं सरापा राज़ हूँ आजकल, मुझे अब ख़्याल में भी न ला ।
मेरे साक़िया, मुझे भूल जा, मुझे भूल जा
मुझे ज़िंदगी से अज़ीज़तर फ़क़त एक तेरी ही जात थी,
तेरी हर निगाह मेरे लिए सबब–ए–सुकून–ए–हयात थी,
मेरी दास्तान–ए–वफ़ा का भी तेरी सारा हुस्न–ए–शिफ़ात थी ।
मगर अब तो रंग ही और है न वो तर्ज़ है न वो तौर है,
ये सितम भी क़ाबिल–ए–ग़ौर है, तुझे अपने हुस्न का वास्ता ।
मेरे साक़िया, मुझे भूल जा, मुझे भूल जा
क़सम इज़्तराबे हयात की मुझे ख़ामोशी में क़रार है,
मेरे सहन–ए–गुलशन–ए–इश्क़ में न ख़िज़ाँ है अब न बाहर है,
यही दिल था रौनक़–ए–अंजुमन, यही दिल चराग़–ए–मज़ार है ।
मुझे अब सुकून–ए–जिगर न दे मुझे अब नवीद–ए–सहल न दे
मुझे अब फ़रेब–ए–नज़र न दे, न हो बहम–ए–इश्क़ में मुब्तला।
मेरे साक़िया, मुझे भूल जा, मुझे भूल जा

अलम= दुख, सारा हुस्न–ए–शिफ़ात= दवा जैसी हुस्न की आढ़ या ओट

()()()

मेरी तबाही का इल्ज़ाम अब शराब पर है
मैं और करता भी क्या, तुम पर आ रही थी बात ।

अब मैं असली मक़सद पर आता हूँ । जिस तरह जनाब 'हरवंशराय बच्चन जी' ने मधुशाला के जरिये और इस तफ़्सीर में आए तमाम क़लम के जादूगरों ने मय से मुतल्लिक़ जितने भी नाम हो सकते हैं, सभी को किसी न किसी तरह आपके सामने रख कर उस परवरदिगार-ए-आलम से लौ लगाने की ताक़ीद की है, उसी तर्ज़ पर, इस तफ़्सील के आग़ाज़ में शुकराने के तहत जिन मो. हतरम शायर का ज़िक्र मैंने किया था, उनकी आला दर्ज़े की क़लमकारी से आपको रुबरु कराने का लालच मैं छोड़ नहीं पा रहा हूँ ।

'बाबू मनमोहनलालजी' 'खाक़ी' साहब ने अपनी शायरी में उस परवरदिगारे-आलम की बंदगी को मय और उससे रुबरु कराने वाले गुरु या उस्ताद को साक़ी के नाम से पुकार कर जो जो कहा है उससे बच्चनजी की मधुशाला की ताईद ही होती है । तो आप भी गोते लगाइए मय-ए-वहदत के सैलाब में या यूँ कहूँ कि शराबे-तहूरा की चुस्कियों का लुत्फ़ लें-

()()()

मिल गया पीरे-मुग़ाँ आबाद मयख़ाना हुआ,
मय से शीशा पुर हुआ, लबरेज़ पैमाना हुआ ।
फिर सदा-ए-कुलकुले-मीना हर इक ग़ोशे में है,
फिर नशे में चूर हो मसरूर मस्ताना हुआ ।
साक़िया ऐसी पिलाई, देख कर और छान कर,
हर घड़ी मुश्ताक़ मेरे दिल का पैमाना हुआ ।
वाह-री क़िस्मत हटा पर्दा है मयख़ाने में आ,
मेरा उनका दौरे-साग़र बेहिज़ाबाना हुआ ।
जाम है शीशा है साक़ी मौसमे-बरसात है,
यार का इसरार 'खाक़ी' नाज़े-जानाना हुआ ।

पीरे-मुग़ाँ =मदिरालय का प्रबन्धक (यहाँ शायर की मुराद गुरु से है), सदा-ए-कुलकुले-मीना = सुराही या बोतल से प्याले में शराब गिरने की आवाज, नाज़े-जानाना = प्रेयसी की हठ

()()()

जाम में मस्ती कहाँ जो तेरे मस्ताने में है,
आबिदों में दम कहाँ जो तेरे दीवाने में है ।
जामे-दिल हम ले फिरे कूचा-ब-कूचा रात-दिन,
हो गया लबरेज़ तेरे मयख़ाने में है ।
जिस बुते-काफ़िर की ख़ातिर मैं हुआ सेहरा-नवर्द,
है पता मुझको चला वह तेरे बुतख़ाने में है ।
मय-ए-वहदत को पिला साक़ी किया 'खाक़ी' को मस्त,
बेख़ुदी में कह उठा, मय मेरे पैमाने में है ।

आबिदों = परहेजगारों, तपस्वियों, सेहरा-नवर्द = जंगलों में घूमने वाला,

()()()

पिलादे शरबते-दीदार साक़ी तिश्ना-लब हूँ मैं,
तपिश आहे-सोज़ाँ की नहीं बुझती सुराही में ।
यदे-मूसा दमे-ईसा तुम्हारे सामने क्या हैं,
लबे-शीरीं में यह पिन्हाँ वह है दस्ते-हिनाई में ।

आहे-सोज़ाँ = जलाने वाली आह, यदे-मूसा = मूसा की हथेली, दमे-ईसा = ईसा की फूँक जिससे मुर्दे जी उठते थे

()()()

न दिल में जोश न अहदे-शबाब बाक़ी है,
न वह ख़ुमार न वह अब शराब बाक़ी है ।

नसीब खुल गए साक़ी की आशनाई से,
हज़ारों जाम पिये और हिसाब बाक़ी है ।
न जब तलक़ किसी सूरत से जाम भर जाये,
तमन्ना बाक़ी है क़द्र-ए-शराब बाक़ी है ।
न इन ज़वाबों पे 'ख़ाकी' समझलो काफ़ी है,
बहुत सवाल हैं जिनका ज़वाब बाक़ी है ।
अहदे-शबाब = यौवन के दिन, क़द्र-ए-शराब = शराब की कदर

()()()

अब तो है वक़्त दूसरा अहदे-शबाब जा चुका,
ग़फ़लत की नींद छोड़ दे श़ग्ले-शराब जा चुका ।
शब भर गुज़र गई यूँ ही वक़्ते-सहर तो चौंक जा,
कुछ तो हया से काम ले रंगे शराब जा चुका ।
'ख़ाकी' सँभल के कर बसर मुर्ग़-ए-अज़ल ने बाँग दी,
पैक़रे-उम्र यक-ब-यक कैसा शिताब जा चुका ।
अहदे-शबाब = यौवन काल, श़ग्ले-शराब = मदिरापान द्वारा मन बहलाव
वक़्ते-सहर = सवेरे का समय, मुर्ग-ए-अजल = मौत रूपी मुर्ग,
पैक़रे-उम्र = आयु का शरीर अर्थात जीवन,
शिताब = जल्द

()()()

मयख़ाने में जाते ही ग़मे-दह्र को भूले,
सिज़्दा किया साक़ी को जानाना समझ कर ।
खाक़ी के गले तौक़ है और पाँव में बेड़ी,
ज़ंज़ीर-ब-क़फ़ कर दिया दीवाना समझ कर ।
गमे-दह्र= संसार की चिंता, ज़ंज़ीर-ब-क़फ़ = हथकड़ी

()()()

मुझे जिस दम ख़्याले–नर्गिसे–मस्ताना आता है,
बड़ी मुश्किल से क़ाबू में दिले–दीवाना आता है ।
मज़ा देता है बादल जब सुए–मयख़ाना आता है,
सुराही झूमती है, वज़्द में पैमाना आता है ।
मेरे जाते ही उठ जाती है फ़ौरन आँख साक़ी की,
वह मैकश हूँ कि इसतक़बाल को मयख़ाना आता है ।
मेरी तौबा है ऐसी जिस पे खुद तौबा को हैरत है,
बदल जाती है नीयत यार जब पैमाना आता है ।
नज़र पीरे–मुग़ां आते ही दिल होता है बेक़ाबू,
ज़रा सी और साक़ी दे तुझे तरसाना आता है ।
चलो ए मयकशो दौड़ो लुटा दी आज साक़ी ने,
वह दोनों हाथों से देता हुआ मस्ताना आता है ।
पियो और ख़ूब भर लो कासा अपना मय–ए वहदत से,
अगर चूके तो 'ख़ाकी' यार को बहकाना आता है ।
ख़्याले–नर्गिसे–मस्ताना = नशीली आँखों का ख्याल,
इसतक़बाल = स्वागत, पीरे–मुग़ां = रसाध्यक्ष अर्थात गुरु,
कासा = प्याला,

()()()

मुश्ताक़ हूँ क़तरे का दर–ए– मयख़ाना न छोडूँगा,
थोड़ी सी सही साक़ी रुख़े–पैमाना न मोड़ूँगा ।
दीवाना हूँ मस्ताना मैं कहता हूँ आज़ादानाँ,
लुट जाएगा मयख़ाना बू–ए–रिंदाना न छोडूँगा ।
छलके है छलकने दे गिरती है तो गिरने दे,
ढाली है तो ढाले जा लब–ए–पैमाना न छोडूंगा ।
साक़ी तेरे कहने से सब घर किया वीराना,
अब और न कुछ कह तू बुतख़ाना न छोडूँगा ।

तेरी सख़ा पे मेरा दिल लोट पोट हैगा,
दामन न छुड़ा अपना मैं काशाना न छोड़ूँगा ।
लब तिश्नगी से मेरे बेताब हो रहे हैं,
साग़र को मेरे भरने दे मैं मस्ताना न छोड़ूँगा ।
ख़ुशरंग रंग मये-वहदत है रंगरेज़ रंगीला है,
'ख़ाकी' की तरह रंग दे रंगवाना न छोड़ूँगा ।
मुस्ताक़ = इच्छुक, बू-ए-रिंदाना = मस्तों का स्वभाव,
सख़ा = दानशीलता, काशाना = घर

()()()

टूटा हुआ मीना है टूटा हुआ पैमाना,
किस मुँह से कहूँ साक़ी भर दे मेरा पैमाना ?
छलनी है मेरा दामन मुश्किल है रफ़ू करना,
छन छन के मये-वहदत मिट जायेगा बुतख़ाना ।
इस नक़्शे-मुहब्बत को उसके गले डालो,
मुद्दत से हसीनों का जो रहा हो दीवाना ।
काबा है कलीसा है बुतख़ाना है मयख़ाना,
इस जल्वा-ए-जानाँ पर दिल हो रहा मस्ताना ।
उजड़ा हुआ सब्ज़ा हूँ उजड़ा हुआ गुलशन हूँ,
इन उजड़े मुक़ामों पे है बन रहा मयख़ाना ।
गुज़री हुई दुनिया का गुज़रा हुआ बंदा हूँ,
साक़ी की नज़र पड़ कर मैं हो गया फ़रज़ाना।
शैदा-ए-मुहब्बत तुम बढ़ बढ़ के क़दम रक़्खो,
साक़ी है 'ख़ाकी' है और महफ़िले-रिंदाना ।
मये-वहदत = अद्वैत की मदिरा, नक़्शे-मुहब्बत = प्रेम का चिन्ह,
कलीसा = गिरिजाघर, सब्ज़ा = हरियाली, फ़रज़ाना = बुद्धिमान

()()()

वह शराबे–तहूरा पिला दे पिया मुझे मस्ती में भी तेरा ध्यान रहे,
तेरा ध्यान रहे तेरा ख़्याल रहे लब बंद दहाँ बे–जबान रहे ।
मय मुझ पे है मय तुझ पे है मैं तुझ से पियूँ तू मुझ से पिये,
तू जाम भरे मैं पीता चलूँ कहूँ और तो तू हैरान रहे ।
मेरा दाँत रहे खुम पैहम तेरी आँख लड़े पैमाने से,
मये–वहदत का वह दौर चले कोई बाक़ी नहीं अरमान रहे ।
मख़मूर मैं बादा–ए–नाब से हो बेपर्दा करूँ मयख़ाने में,
तू जल्वा दिखा मैं आह भरूँ याँ होश न हो वहाँ ध्यान रहे ।
मैं तुझ पे फ़िदा तू मुझ पे फ़िदा फिर मुझ में तुझ में फ़र्क़ नहो,
मैं तुझ में फ़ना तू मुझ में फ़ना पहचान रहे न निशान रहे ।
बुतख़ाना जो था मयख़ाना बना रिंदानाए–मिल्लत शौक़ करो,
हर गाम पियो भर जाम पियो साक़ी की तरफ़ रूज़हान रहे ।
ओ इश्क़े–हक़ीक़ी के मतवाले खुम पर खुम गर तू पीता रहे,
बदमस्ती में फिर होश कहाँ जो ख़्याल रहे व गुमान रहे ।
दिल थाम लिया आँखें बदलीं बदली क़िस्मत बदला आलम,
किस शान से बदला साक़ी ने क्या काम यहाँ शैतान रहे ?
ख़ाकी के जिगर में टीस उठी जब मस्त निगाहें पार हुईं
साक़ी ने कहा ओ होश में आ बेशौक़ न हो यह ध्यान रहे ।

शराबे–तहूरा = पवित्र मदिरा, दहाँ = मुँह, खुम पैहम = लगातार मदिरा पात्र पर, पैमाने = प्याला अर्थात दिल, मये–वहदत = अद्वैत की मदिरा,बादा–ए–नाब = खालिस मदिरा (प्रेम–मदिरा), मिल्लत = सत्संग, हर गाम = हर कदम

()()()

क्यों मस्त हवाएँ आती हैं, क्या साक़ी ने मीना तोड़ दिया,
रिंदों की मस्ती तो देखो, मयख़ाने से जाना छोड़ दिया ।
मय मुश्क़ी है न अंगूरी, साक़ी की बनी है अलबेली,
यक जाम पिया ख़ुद को भूला, साक़ी ने रिश्ता जोड़ दिया ।
असली न रही तलछट ही पिला, मैं तिश्नालबी से आजिज़ हूँ,

बेहोश भी हूँ और होश भी है, क्यों तूने साग़र तोड़ दिया ?
बस एक तबस्सुम काफ़ी है, साक़ी से निगाहें मिलने पर,
यह दोनों जहां हैं हाथों में, गर दिल का साग़र मोड़ लिया ।
साक़ी ने कहा उठ आ 'ख़ाकी' कुछ होश की अब भी दवा कर ले,
तारीक़िओ-ज़ुल्मत दूर हुई और मुर्ग़े-सहर ने शोर किया ।
साक़ी = यहाँ शायर की साक़ी से मुराद गुरु से है, साग़र = प्याला (दिल) से, तारीकिओ-ज़ुल्मत = ज़ुल्म का अंधेरा

()()()

मयनोशों ने देखा मयख़ाना तो वज्द में आकार झूम उठे,
मीना भी सारे झूम उठे पैमाना-ओ-साग़र झूम उठे ।
छाई घटा सर पर काली तो मारे खुशी से चीख़ उठे,
चीख़ उठे वह नाच उठे और मस्ती में आकर झूम उठे ।
मस्तों से कहा पीलो मय तो साक़ी से आँखें चार हुईं,
नज़रों से पिला दी साक़ी ने बेहोश हुये और झूम उठे ।
क्या ख़ौफ़ रहा इस दुनिया का ऊक़्बा के लिए साक़ी जाने,
था तख़्ते-ज़मीं तो गर्दिश में अंजुम भी फ़लक़ पर झूम उठे ।
किसने पिला दी इतनी उसे जो दोनों जहाँ को भूल गया,
गर होश में 'ख़ाकी' आए ज़रा तो सारा आलम झूम उठे ।
वज्द = मस्ती, ऊकबा = परलोक, अंजुम = सितारे

()()()

साक़ी ने कहा मुझ से तू किस को ढूँढ़ता है,
खोया है यार मेरा मैं उसको ढूँढ़ता हूँ ।
मस्ज़िद में ढूंढ़ आया मंदिर में ढूंढ़ आया,
पाया पता न कुछ भी मैं उसको ढूँढ़ता हूँ ।
काबा में जा अज़ाँ दी काशी में जा पुकारा,

उसका निशाँ न पाया मैं जिस को ढूँढ़ता हूँ ।
दर-दर पे खाई ठोकर क़िस्मत को कोस डाला,
फिर भी न जिसे पाया मैं उस को ढूँढ़ता हूँ ।
बहरे-क़रम बतादे क्या तुझ को कुछ पता है,
आज़िज़ हूँ बेख़बर हूँ जिस जा पे ढूँढ़ता हूँ ।
ऐ बेनिशाँ मुसाफ़िर क्या ख़ुद को ढूँढ़ता है,
पर्दा उठा फ़रद का अब ख़ुद को ढूँढ़ता हूँ ।
साक़ी की इक नज़र ने 'ख़ाकी' के रुख़ को फेरा,
उस मज़हबीं को पाया मैं जिस को ढूँढ़ता हूँ ।
बहरे-करम = कृपा कर के, बेनिशाँ मुसाफ़िर = लक्ष्यहीन यात्री,
फ़रद = अहम (ख़ुदी), मज़हबीं = चाँद के मुख जैसी

चलते-चलते थोड़ी मेरी भी आपबीती सुनते जाएँ------
इक नज़र शबाब की, दो क़तरे शराब के,
ऐसे में ख़ुदा को कोई, याद क्यों करे ?

मुझे याद आता है वो मरहला जब मैं इसी तरह की इल्तज़ा लेकर साक़ी के पास गिड़गिड़ाया था कुछ यूँ कि-

इतनी तो अब पिला ही दे, कि रात कट सके,
थोड़ा ज़हर मिला ही दे, कि रात कट सके ।
की है वफ़ा तमाम उम्र, याद कर ज़रा,
उस याद का सिला ही दे, कि रात कट सके ।
गुज़री है आज तक यूँ ही, बेलुत्फ़ ज़िंदगी,
अब कोई गुल खिला ही दे, कि रात कट सके ।
महमाँ हूँ आज रात का, रवानगी है तय,
आँचल जरा हिला ही दे, कि रात कट सके ।

और जब पाया कि साक़ी कुछ कुछ पसीजने लगी है तो मैंने नहले पर दहला जड़ा -

साक़िया तेरी निगाहेनाज़, गर अर्हम न होगी,
तिश्नगी बढ़ती रहेगी, लग्ज़िशे-पा कम न होगी ।

कैफ़ जो आसूदगी दे, वो तेरे क़दमों तले है,
दे जहाँ की वुसअतें, आसूदगी ताहम न होगी ।
राज़ की है बात इक, जो तू कहे तो मैं बता दूँ,
शर्त है इतनी कि तू, खाये क़सम, बरहम न होगी ।
रिंद–ज़ाहिद औ' सुबू, साग़र सभी ये कह रहे थे,
साक़िया गर तू न होगी, शबनमी शबनम न होगी ।
और यह भी कह गए, ले ले बलाएँ जाम की वो,
ख़ाक़ होगी मयकदे में, जात फिर आदम न होगी ।
है सताता ख़ौफ़, के, ईमान का क्या हश्र होगा,
होश की बातें न होंगी, वाज़ भी बाहम न होगी ।
कौन किस पर रोयेगा, जब मयकदे वीरान होंगे,
तू बता अल्लाह की, हर एक शय नादिम न होगी ?
कुफ़्र से डर साक़िया, अच्छा नहीं इनको सताना,
आज है 'वर्मा' जवानी, कल को ये क़ाइम न होगी ।
अर्हम = दयालु, नादिम = बदनाम, आसूदगी = संतुष्टि,
वाज़ = धर्मोपदेश

अब इससे ज़ियादा और क्या मस्का लगाया जा सकता था ? पर जब मुझे यक़ीन हो गया कि साक़ी की उसके पेशे के मद्देनज़र कुछ मज़बूरियाँ हैं, उसका तो काम ही है हर एक का दिल बहलाना, फिर चाहे जैसे हो, और यह भी कि वो किसी एक का होकर नहीं रह सकती, तो मैंने भी उसे खूब छकाया–

साक़ी मिरे पैमान को, तेरी नज़र लगी,
दिन–रात की क्या बात है, शामो–सहर लगी ।
माना तग़ाफ़ुल ही तग़ाफ़ुल, दस्तयाब था,
फिर भी निगाहे–नाज़, हरदम बा–बहर लगी ।
इश्वागरी, जादू–निगाही और बाँकपन,
मुझको सदा हर इक अदा, बस बेहतर लगी ।
सच बोलता, तुझ पर फ़िदा, सौ–जान से हूँ मैं,

कहता ज़रा भी मैं नहीं, ज़ेरो-ज़बर लगी ।
ईमान जैसी चीज़ कोई, तोड़ता है क्या,
पर क्या करूँ जो टूटने पर, ही ख़बर लगी ।
इंसान से तो लड़ लिया जाए, किसी तरह,
कैसे बचे 'वर्मा' बला से, जो जिगर लगी ।
पैमान = प्रतिज्ञा, वादा तग़ाफुल = उपेक्षा, नज़र अंदाज़ करना,
दस्तयाब = प्राप्त होना, मिलना, इश्वागरी = मोहक अदाएं, हाव-भाव

और ऐसे भी -
हो गई है इन्तहा, अब बस करो अब मत पिलाओ,
आँख का करके इशारा, जोश न मुझको दिलाओ ।

जानता तासीर मैं, तेरी नज़र की साक़िया रे,
पड़ गई इक बार जिस पर, ना उठे जितना हिलाओ ।

आम की औक़ात क्या, ख़ासा पियक्कड़ झूम जाए,
कह उठे वो आजिज़ी से, अब न मारो, अब जिलाओ ।

बस ज़रा सी, बस ज़रा सी, रट लगाए ही रहेगा,
फिर न माँगूँगा कहेगा, लो क़सम जो भी खिलाओ ।

साक़िया ईमान से, ज़ाहिद न बच के जा सकेगा,
चाक करता वो फिरेगा, पैरहन फिर फिर सिलाओ ।

हो सके तो बेक़ुसूरों, पर रहम करना ज़रा सा,
बेहतर तो ये ही होगा, शोख़ नज़रें न मिलाओ ।

रिंद तो फिर रिंद है, तू क्या करेगा, कह उठे जो,
साक़िया मुझको पिलाओ, साक़िया मुझको पिलाओ ।

एक कारगर बात जो जनाब **बाजुद्दीन 'बाज़'** साहब ने कही है, आपके साथ सांझा करना चाहता हूँ जिससे हमें सबक मिले–

जलने दे आज मेरी जवानी शराब में,
साक़ी मिला न थोड़ा भी पानी शराब में,
बोतल बगल में हाथ में टूटा–सा जाम है,
मुझको मिली है ये ही निशानी शराब में ।

और अगरचे आप जनाब **बाजुद्दीन 'बाज़'** साहब की तरह नहीं कहना चाहते हैं कि *'मुझको मिली है ये ही निशानी शराब में'* तो मेरी बात पर ग़ौर फ़र्मायें–

सुन बावरे जिस दिन, सुरा एमाल हो गई,
सेहत तिरी बीमारियों का, थाल हो गई ।

क्या कह रहा, मय मस्त से भी मस्त चीज़ है ?
कहता फिरेगा बाद में, ज़ंजाल हो गई ।

देखो मुझे ही देख लो, क्या हाल हो गया,
तब, जब मुझे, छोड़े हुये भी, साल हो गई ।

मेरा ग़रूरे–ज़िस्म सारा ख़ाक हो गया,
काया शराबे–शौक़ से, कंकाल हो गई ।

परिवार वाले आजकल, धिक्कारने लगे
उनके हमारे बीच में, दीवाल हो गई ।

ले–दे के मेरे पास थी, बस आबरु बची,
वो भी सरे बाज़ार में, पामाल हो गई ।

कोई अकेला मैं नहीं, आज़ार इस तरह,
जिस मूँ लगी वो ज़िंदगी, कंगाल हो गई ।

कर आज ही तौबा, तुझे 'वर्मा' नहीं पता ?
पछताएगा, आदत अगर, विकराल हो गई ।
एमाल = बुरीलत

या यूँ कहूँ कि–
सरासर ग़लत लत, शराब की लत,
ज़िल्लत ज़लालत इसकी बदौलत,
वकालत अदालत इसकी बदौलत,
ग़फ़्लत ज़हालत इसकी बदौलत,
पैसे की क़िल्लत भी इसकी बदौलत,
जीने की मोहलत ख़त्म, इसकी बदौलत ।

इस तफ़्सीर के इख़्तिदाम में, इसे पढ़ने–सुनने वालों से मेरी भी इल्तज़ा है कि बराए मेहरवानी अब तो मान ही लें जो मैं अब तक समझने और समझाने की कोशिश कर रहा था, और रब नाम की मदिरा का लुत्फ़ लेते हुये अपने एक अच्छा बंदा होने का सुबूत दें–
सच कहूँ बेटोक अक्सर, शौक़ से पीता हूँ मैं,
पर अगर पीने लगूँ, ख़म ठोक के पीता हूँ मैं ।

हाथ भी धरता नहीं, देने पड़ें पैसे अगर,
मुफ़्त में मिल जाए तो फिर ज़ौक़ से पीता हूँ मैं ।

कह न दे कोई अनाड़ी, ग़ैर बाक़िफ़ तौर से,
इसलिए ले–ले मज़े, दम रोक के पीता हूँ मैं ।

है नहीं दरकार सोडा, बर्फ़, कुतरन आदि की,
नीट सर चढ़ने लगे, तो कोक़ से पीता हूँ मैं ।

जाम–ओ–मीना अगर जो मिल सके तो ठीक है,
जो नहीं तो फिर सुबू की नोंक से पीता हूँ मैं ।

कब भला अपना गुज़ारा है हुआ दो-एक से,
वाह क्या कहना मिले ग़र, थोक़ ले पीता हूँ मैं ।

हों लबालब जाम जो, रब नाम छलकाते हुये,
झोंक में बेरोक हरदम ओक से पीता हूँ मैं ।

ख़ुदा हाफ़िज़ !
ज़ल्द मिलेंगे.....

हाँ, जाते-जाते इतना याद ज़रूर दिलाना चाहूँगा कि-
हज़ारों बह गये इन बोतलों के बंद पानी में,
गिलासों में जो डूबे फिर न उबरे ज़िन्दगानी में ।